चतुर्थ अध्याय

भक्ति और भावाभिव्यंजना

विनयभाव

भक्ति में विनयभाव का सर्वाधिक महत्व है। विनय के बिना भक्ति भाव का उदय नहीं हो सकता। यह कहा जा सकता है कि विनय भक्ति के मन्दिर का सिंहद्वार है। द्वार में प्रवेश करके ही मन्दिर में पहुंचा जा सकता है। इसी प्रकार विनयभाव से ही भक्ति का प्रारम्भ होता है। भक्ति की अवधारणा के प्रसंग में विनय के महत्व और स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

भागवद् भक्ति की शब्दावलि में विनय को `भगवद् विषयक रति` कहा जायेगा।

विनय का भाव आराध्य की महत्ता और आत्म लघुता की अनुभूति से जागता है। आराध्य की महत्ता की अनुभूति जितनी गहरी होती जायेगी, आत्म लघुता का भाव उतना ही तीव्र होता जायेगा। इस प्रकार विनय की सान्द्रता और और बढ़ती जायेगी।

विनय का भाव जब वाणी द्वारा अभिव्यक्त होता है तब वह भक्ति के अनेक रूप ग्रहण करता है। जैसे नदी अपने उद्गम स्थान से निकल कर अनेक धाराओं में बहने लगती है, उसी प्रकार विनय का भाव भक्ति के अनेक रूपों में फूट पड़ता है।

आराध्य की महत्ता की अनुभूति जब वाणी द्वारा अभिव्यक्त होती है तो भक्त आराध्य के गुणों में भीगकर उनका भजन-कीर्तन करता है, स्तुति करता है, नाम रटता है और जब उसका ध्यान आत्मलघुता की ओर जाता है तो वह आराध्य के समक्ष अपनी असामर्थ्य और दैन्य को प्रकट करता है, अपने दोषों का प्रत्याख्यान-आलोचना करता है, आराध्य की शरण में रह कर उनकी दासता, सेवा करता है और दुःखों से छुड़ाने, कष्ट से उबारने की विनती करता है।

जैसे-जैसे भक्त भक्ति की इस निर्झरणी में गोते लगाता है, उसका मन

शान्त, शीतल और पावन होता जाता है। भक्ति में उसकी एकतानता बढ़ती जाती है और वह उस चरम भाव तक पहुंच जाता है जहां सम्पूर्ण रूप से अपने को आराध्य को समर्पित कर देता है। वह आराध्यमय हो जाता है।

जैन कवियों के इस आराध्यमयहोने में एक स्वरूपात मौलिक भिन्नता है। यहां भक्त आराध्यमय नहीं होता प्रत्युत स्वयं आराध्य बन जाता है। वह उपास्यतत्व के रहस्य को जान लेता है। सम्यक् दृष्टि के प्रकाश में उसे आत्मा और परमात्माका स्वरूपात भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है तब वह आत्माराधना में लग जाता है। यह भक्ति की चरम स्थिति का ध्यान-योग की भूमि पर पहुंच जाना है।

जैन कवियों के हिन्दी पद साहित्य में विनयभाव के उपर्युक्त सभी रूपों के सुन्दर अंकन उपलब्ध होते हैं। प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश की परम्परा से उन्हें काव्य रचना के जो आधारस्रोत प्राप्त हुए, उन्हें युगीन सन्दर्भों, नयी काव्य विधाओं और समसामयिक प्रचलित शब्दावलि में पिरोकर उन्होंने भक्ति काव्य की जयमाला तैयार की।

तीर्थंकर, जिन, अर्हंत् के चरणों में जैन कवियों ने पदों के रूप में भक्ति की जो पुष्पांजलि समर्पित की वह हिन्दी साहित्य की महनीय निधि है।

इन पदों में कहीं तो भक्त अपने आराध्य के गुणोंपर रीझकर उनकी स्तुति करता है, कीर्तन करता है, नाम रटता है, कहीं अपनी दीनता प्रकट करके शरण में लेने, कष्टों से उबारने की विनती करता है, निहोरे करता है।

जैन कवियों के पदों में हिन्दी के अन्य कवियों की अपेक्षा कतिपय मौलिक भिन्नताएं भी हैं। वे उनकी सैद्धान्तिक मान्यताओं की भिन्नता के कारण हैं। उदाहरण के लिए भक्त अपने आराध्य से अपने उद्धार की विनती तो करता है, पर उसका यह दुःख साधारण नहीं है, वह तो संसार के दुःखों से, जन्म-मरण से छुटकारा दिलाने की प्रार्थना करता है। वह जनम-जनम तक भक्ति में लौ लगे रहने की भीख नहीं मांगता प्रत्युत तब तक भक्ति में लीन रहने की विनती

करता है जब तक मोक्ष पद नहीं मिल जाता ।

आगे भक्ति के इन्हीं विविध रूपों को प्रस्तुत किया जायेगा ।

हिन्दी के जैन कवियों ने भगवान् का गुणगान अनेक प्रकार से किया है । भगवान् के गुण असीम हैं । सभी उनके गुणों का गान करते हैं पर पूर्ण रूप से उनके गुणों का कथन कोई नहीं कर सकता ।

भूधर कहते हैं कि हे प्रभु ! नागेन्द्र, सुरेन्द्र, नरेन्द्र सब तुम्हारे गुण गाते हैं, किन्तु पार नहीं पाते । आकाश को बालिश्त से कौन नाप सकता है । चमकते तारों को कौन गिन सकता है । कौन ज्ञानी मेघों की बूंदों की संख्या समझ कर सुना सकता है । गनपति भी सम्पूर्ण सुयश नहीं गा सकते --

शेष सुरेश नरेश रटैं तोहि पार न कोई पावै जू ।
कापै नपत व्योम बिलसतसौं को तारे गिन लावै जू ।
कौन सुजान मेघ बुंदन की संख्या समुझि सुनावै जू ।
भूधर सुजस गीत संपूरन गनपति भी नहीं गावै जू ।[1]

धानतराय कहते हैं, कि हे प्रभु, मैं तेरी स्तुति किस प्रकार करूं । जब गणधर भी स्तुति करते हुए पार प्राप्त नहीं कर पाते तो फिर मेरी बुद्धि क्या है । इन्द्र जन्म-भर सहस्र जिह्वाओंको धारण कर तुम्हारे यश को कहता है, फिर भी पूरा नहीं कह पाता । फिर भला मैं एक जिह्वा से उसे कहने में कैसे समर्थ हो सकता हूं । मेरा यह प्रयास वैसा ही होगा जैसे उल्लू सूर्य के गुणों को कहने का उपक्रम करे । हे भगवन ! तुम्हारे गुणों को कहने का वचनों में वैसे ही बल नहीं है, जैसे नेत्रों में आकाश के तारे गिनने की शक्ति नहीं होती --

प्रभु मैं किहि विधि थुति करौं तेरी ।
गणधर कहत पार नहिं पावैं कहा बुद्धि है मेरी ।
शक्र जनम भरि सहस जीभ धरि तुम जस होत न पूरा ।

१- भूधरविलास, पद ५२

एक जीभ कैसे गुण गावै उलु कहै किमि सुरा ।
चमर छत्र सिंहासन बरनों, ये गुण तुमतें न्यारे ।
तुम गुण कहन वचन बल नाहीं नैन गिनै किमि तारे[२] ।।

बुधजन कहते हैं कि केवलज्ञानीप्रभु की शोभा अद्भुत है। सुर, नर, मुनि कर्मशत्रु का नाश करने के लिए उनकी उपासना करते हैं। वे प्रभु परिग्रहरहित और आठ प्रातिहार्य युक्त हैं तथा संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं। संसार को कल्याण का मार्ग बताने वाले हैं। अठारह दोषोंसे रहित तथा समस्त गुणों से युक्त हैं। उनके मुखसे दिव्यध्वनि के रूप में अमृत वर्षा होती है। हृदय में उनका ध्यान करते ही क्षण मात्र में जन्म जन्मान्तर के पाप दूर हो जाते हैं। ऐसे प्रभु का अपने कल्याण के लिए सदैव ध्यान करना चाहिए, कभी भी उनको भुलाना नहीं चाहिए --

अहो देखो केवलज्ञानी, ज्ञानी छवि भली या विराजे हो ।
सुर नर मुनि याकी सेवा करत हैं करम के हरनको काजै हो ।
परिग्रहरहित प्रातिहारजुत जगनायकता छाजै हो ।
दोष बिना गुन सकल सुधारस दिविधुनि मुखतैं गाजै हो ।
चितमें चितवत ही छिनमाही जनम जनम अघ भाजै हो ।
बुधजन याकों कबहुं न बिसारौ अपने हितके काजै हो[३] ।

सिद्धान्त ग्रन्थों में केवलज्ञान का जो स्वरूप प्रतिपादित किया गया है, उसकी ओर इंगित करते हुए बुधजन कहते हैं कि हे प्रभु ! तुम्हारी महिमाअवर्णनीय है। इन्द्र आदि भी तुम्हारे गुणों का गान करने में अपने को असमर्थ पाते हैं फिर मैं तुम्हारे असीम गुणों को कैसे गा सकता हूं। षट्द्रव्यों में व्याप्त सभी गुणों को आप एक साथ देखते हैं। विधि और निषेध के द्वारा उनका कथन करके तुमने द्वादशांगवाणी का निरूपण किया। तुम्हारे पास आते ही भक्तजन क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं। अन्यत्र यह सम्भव नहीं है। जिन्होंने यह क्षायिक सम्यक्त्व

२- द्यानत पद संग्रह, पद ४५
३- बुधजन विलास, पद १६

प्राप्त कर लिया है,उन्होंने ज्ञान के द्वारा भव-स्थिति नष्ट कर दी अर्थात् उनका भव-भ्रमण छूट गया। मेरे जैसे अल्पमति वाले प्राणी ने भी तुम्हारे ध्यान के प्रभाव से श्रावक की पदवी को प्राप्त किया। तुम्हारी ही कृपा से राग-द्वेष का त्याग करके मैं अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप का दर्शन करने में समर्थ हो सकूंगा --

प्रभु तेरी महिमा वरणी न जाई।
इन्द्रादिक सब तुम गुण गावत मैं कछु पार न पाई।
षट द्रव्य में गुण व्यापत जेते एक समय में लखाई।
ताकी कथनी विधि निषेध कर द्वादस अंग सवाई।
क्षायिक समकित तुम ढिग पावत और ठौर नहीं पाई।
जिन पाई तिन भव तिथि गाही ज्ञान की रीति बताई।
मो से अल्प बुधि तुम ध्यावत श्रावक पदवी पाई।
तुमही तें अभिराम लह्यो निज राग दोष बिसराई।[४]

दौलतराम परमात्मा के गुणों का विश्वास पूर्वक उल्लेख करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु! आज मैंने तेरी महिमा जानी। अभी तक मैं मोह का महामद पीकर तुम्हारी सुधि भुला हुआ था। अब भाग्योदय से तुम्हारी शान्त छवि देख कर जड़ता रूप नींद नष्ट हो गयी है। जग को विजयी करके दुःख देने वाले राग-द्वेष की स्थिति का ज्ञान तुम्हें हो गया। तुम शान्ति रूपी सुधा के सागर तथा गुणों के भंडार हो। परम वैरागी तथा भेद-विज्ञानी हो। अत्यन्त वैभवयुक्त समवशरण में विराजित होकर भी निर्ग्रन्थ हो। क्रोध रहित होते हुए भी दुष्ट मोह का नाश करने वाले हो। तीनों लोकों में पूज्य होने पर भी मानरहित हो। सम्पूर्ण जगत को जानते हो फिर भी उसमें उपेक्षा भाव रखते हो। परम ब्रह्मचारी हो कर भी तुमने प्रिय शिव रमणी का वरण किया। कृतकृत्य हो कर भी तुमने मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया तथा मोक्ष-मार्ग का नेतृत्व किया। तुम्हारी ही कृपा से मेरे हृदय में मुक्ति की निशानी भक्ति का आविर्भाव हुआ। अब दया करके मुझे भी पार लगा दो --

---

४- हिन्दी पद संग्रह, पद २४८

प्रभु थारी आज महिमा जानी ।
अबलौं मोह महामद पिय मैं, तुमरी सुधि बिसरानी ।
भाग जगे तुम शांति छवि लखि जड़ता नींद बिलानी ।
जग विजयी दुखदाय रागरुष तुम तिनकी थिति मानी ।
शान्ति सुधासागर गुन आगर परमविराग विज्ञानी ।
समवसरन अतिशय कमलाजुत पै निर्ग्रन्थ निदानी ।
क्रोधविना दुठ मोहविदारक, त्रिभुवनपूज्य अमानी ।
एक स्वरूप सकलज्ञेयाकृत जगउदास जग-ज्ञानी ।
शत्रुमित्र सबमें तुम सम हो जो दुख सुख फल थानी ।
परम ब्रह्मचारी ह्वै प्यारी तुम हेरी शिवरानी ।
ह्वै कृतकृत्य तदपि तुम शिवमग उपदेशक अगवानी ।
भई कृपा तुमरी तुम में तैं भक्ति सुमुक्ति निशानी ।
ह्वै दयाल अब देहु दौलको जो तुमने कृति ठानी ।[५]

परमात्मा के स्वरूप की महिमा जानने के बाद दौलतराम कहते हैंकि अब मुझे अन्य कुदेव नहीं सुहाते । हे जिन ! मैंने आपके चरणोंसे रति जोड़ ली है । अन्य देव काम और क्रोधवश अशनि और असि को धारण करते हैं और निशंक होकर अंक में गोरी को धारण करते हैं। वे अन्य लोगों के भाव क्या सुधारेंगे जो स्वयं कुभावों के भार से युक्त हैं । तुम मोह, क्रोध और लोभ से रहित हो तथा शान्त रस को पीकर तृप्त हो । तुम्हें त्याग कर जो अन्य कुदेवों की सेवा करता है वह विपत्तियों को मोल लेता है । तुम्हें त्याग कर अन्य कुदेवों का भजन करना किशमिश को छोड़ कर कड़वी निम्बौरी खाने जैसा है। हे प्रभु मैं विकट भव-समुद्र में फंसा हुआ हूं मेरा उद्धार करो --

और अबै न कुदेव सुहावैं जिन थाके चरनन रति जोरी ।
काम कोहवश गहैं अशन असि अंकनिशंक धरैं तिय गोरी ।

५- दौलतविलास, पद ११९

औरन के किम भाव सुधारें आप कुभाव भार घर धोरी ।
तुम विनमोह अकोह छोहविन छके शांतरस पीय कटोरी ।
तुम तज सेय अमेय भरी जो जानत हो विपदा सब मोरी ।
तुम तज तिने भजे शठ जोसो, दाखन चाखत खात निमोरी ।
हे जगतार उधार दौल को निकट विकट भव जलधि हिलोरी ।[६]

हे प्रभु ! तुम्हारा सुयश उजागर है । ज्ञानी मुनिगण उसका गान करते हैं । सारे संसार को वश में करने वाले अजेय मोह रूपी महा भट का तुमने ध्यान रूपी तलवार के द्वारा नाश कर दिया । अनादि काल से अविद्या रूपी निद्रा के कारण जिन्होंने अपने निज स्वरूप को भुला दिया था । वे तुम्हारी वाणी को सुनकर जागृत हो गये हैं और उन्होंने अपनी आत्मनिधि को प्राप्त कर लिया है । तुम कल्याणकारी हो, जग में श्रेष्ठ हो, तुम्हारी शरण ही मुक्ति के मार्ग को बताने वाली है । तुम्हारे चरणों की सेवा जन्म, जरा और मृत्यु रूप असाध्य वर रोग के लिए परमौषधि है । तुम्हारे पांच कल्याणकों के समय तीनों लोकों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी । विष्णु, चिदाम्बर, जिष्णु, दिगम्बर, बुध, शिव आदि कह कर ध्यानी तुम्हारा ध्यान लगाते हैं । तुम्हारे ज्ञान में सभी द्रव्य अपने गुण, पर्याय, परिणति सहित प्रत्यक्ष हैं । हे प्रभु दौलतराम के हृदय की आशा पूरी करो । मैं भी आत्मानुभव के द्वारा अपना कल्याण करूं —

हे जिन तेरो सुजस उजागर गावत हैं मुनिजन ज्ञानी ।
दुर्जय मोह महाभट जाने निजवश कीने जगप्रानी ।
सो तुम ध्यानकृपान पानिगहि ततछिन ताकी थिति भानी ।
सुप्त अनादि अविद्या निद्रा जिन जन निजसुधि विसरानी ।
ह्वै सचेत तिन निज निधि पाई श्रवन सुनी जब तुम बानी ।
मंगलमय तू जग में उत्तम तुही शरन शिव मगदानी ।
तुवपद-सेवा परम औषधि जन्मजरामृतगदहानी ।

६- दौलत विलास, पद ७१

तुमरे पंचकल्यानकमाहीं त्रिभुवन मोददशा ठानी ।
विष्णु विदम्बर जिष्णु दिगम्बर बुधशिव कह ध्यावत ध्यानी ।
सर्व गुण परजयपरनति तुम सुबोध में नहिं छानी ।
तातैं दौल दास उर आशा प्रगट करी निजरससानी ।।[७]

दौलतराम कहते हैं कि भाग्योदय से मोह का नाश करने वाले जिनपाल के दर्शन हुए । वह जिनपाल सुन्दर हैं, निशंक हैं तथा राग रहित हैं । यही कारण है कि वे वस्त्र, शस्त्र और स्त्री से भी रहित हैं । उनके ज्ञान में सभी पदार्थ झलकते दिखाई देते हैं । वे अपने शुद्ध स्वरूप में लीन हैं तथा इच्छा से रहित हैं । जिनके वचन परहितकारी, परिमित तथा सरस हैं, जिनकी छवि को देखकर प्राणी अपनी आत्म-निधि पा कर कृतार्थ होते हैं, जिनके गुणों का एकाग्र भाव से चिन्तन करने पर यह विकट भव-समुद्र पार करना सरल हो जाता है ---

दीठा भागतैं जिनपाला मोहनाशने वाला ।
सुभग निशंक रागविन यातैं वसन न आयुध बाला ।
जास ज्ञान में झलकत भासत सकल पदारथमाला ।
निजमें लीन हीन इच्छा परहितमित वचन रसाला ।
लखि जाकी छवि आतम निधि निज पावत होत निहाला ।
दौल जासगुन चिंतत रत ह्वै निकट विकट भवनाला ।।[८]

दौलतराम ने विभिन्न तीर्थंकरों की भक्ति में पृथक्-पृथक् पदों की रचना की है पर उनका स्वर प्राय: एक ही है । तीर्थंकर पार्श्व की भक्ति में वे कहते हैं कि श्यामवर्ण के पार्श्वप्रभु का नाम जपने से भव-भ्रमण से छुटकारा मिल जाता है । पाप छिप जाते हैं और शुद्धातम का खजाना प्रकट हो जाता है । 'समरस' की गागर का पान करते ही पर चाह रूप दाह फट दूर हो जाती है। कर्म-कलंक की जंजीरें कट जाती हैं और शिवपुर का मार्ग दिखाई देने लगता है । मोह और लोभ के घटाघन

७- दौलत विलास, पद ४६
८- वही, पद ३५

बड़ी-बड़ी घटाओं से युक्त बादल फट जाते हैं और भेद ज्ञान की तहें खुल जाती हैं। हे प्रभु तुम्हारे ही कृपा-कटाक्ष से दोनों नागों की विपत्ति टली थी। हे मुक्ति-रमा के कंत प्रभु। मैं तुम्हारे चरणों में नमन करता हूं, वन्दन करता हूं --

> शामरिया के नाम जपे तें छूट जाय भवभामरियां।
> दुरित दुरत पुन पुरत फुरत गुन, आतम की निधि आगरियां।
> विघटत ह्वै परवाह बाह फट गटकत समरस गागरियां।
> कटत कलंक कर्म कलसायन, प्रगटत शिवपुर डागरियां।
> फटत घटाघन मोह छोह हट, प्रगटत भेदज्ञान धरियां।
> कृपाकटाक्ष तुमारी ही से, जुगल नागविपदा टरियां।
> धार भये सो मुक्तिरमावर, `दौल` नमैं तुव पागरियां।[६]

द्यानतराय ने तीर्थंकरों की भक्ति में अनेक पदों की रचना की है। प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ की भक्ति में वे कहते हैं कि हे मन। भगवान् श्री आदि जिनेन्द्र का भजन कर। वह तुम्हारे पापों को दूर करेंगे। श्री आदिजिनेन्द्र नाभिराय तथा मरुदेवी के पुत्र हैं। वह सम्पूर्ण लोक में पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शोभायमान हैं। तीन लोकों के इन्द्र जिनका ध्यान करते हैं। प्रभु मिथ्यात्व तिमिर का नाश करने के लिए सूर्य के तुल्य तेजोनिधान हैं। वह शुद्ध हैं, बुद्ध हैं, परमात्मा हैं तथा आनन्दकन्द हैं। उनको पा कर सुखों की प्राप्ति होती है तथा दुःखों का नाश होता है। जो मुनिवृन्द उनका ध्यान करते हैं वे परम आनन्द प्राप्त करते हैं। कवि कहते हैं कि मन, वचन तथा कर्म से श्री जिनराज की वन्दना करने से नित्य शिवसुख प्राप्त होता है।

> भज रे भज रे मन आदिजिनंद दूर करैं तेरे अघवृंद।
> नाभिराय मरुदेवी नंद सकल लोकमें पूनमचन्द।।
> जाको ध्यावत त्रिभुवन इंद मिथ्यातमनाशन जु दिनंद।
> शुद्ध बुद्ध प्रभु आनंदकंद पायो सुख नास्यो दुखदंद।।

६- दौलत विलास, पद २४

जाको ध्यान धरें छ मुनिवृन्द तेहँ पावत परम अनंद ।
जिनको मन-वच-तन-करि वंद धानत लहिये शिवसुखकंद ।।[१०]

तीर्थंकर महावीर से विनती करते हुए धानतराय कहते हैं कि हे महावीर प्रभु ! अब मुझे पार लगा दो । हे सिद्धार्थनन्दन आप जग में वन्दनीय हैं, पापों को हरने वाले हैं । धीर हैं । हे भगवन् आप केवल ज्ञानी हैं, आत्मध्यानी हैं, अनुपम दानी हैं । आपकी दिव्य-ध्वनि गहन और गम्भीर है । आप मोक्ष के कारण हैं, दोषों के निवारण करने वाले हैं तथा रोष के विदारण में वीर हैं । आपकी वीतराग मुद्रा समता से शोभित है जिसका दर्शन आनन्द-प्रदान करने वाला तथा आपदाओं और पीड़ाओं को नष्ट करने वाला है । आप बालयति हैं, व्रतों में दृढ़ हैं, समकित योग के धारक हैं तथा दुःख दावानल के लिए नीर हैं । हे भगवन आपके गुण अनन्त हैं तथा चन्द्रमा, कर्पूर, ओस और रत्नराशिवत् निर्मल हैं । धानत राय जी कहते हैं कि यदि आपके गुण समुद्र में से हमें एक गुण बिन्दु भी प्राप्त हो जाए तो संसार बाधा को दूर करने में समर्थ हो जायें --

अब मोहि तार लेहु महावीर,
सिद्धारथनन्दन जगवन्दन पापनिकन्दन धीर ।
ज्ञानी ध्यानी दानी जानी बानी गहन गंभीर ।
मोक्ष के कारन दोषनिवारन रोषविदारन वीर,
आनन्दपूरत समतासूरत चूरत आपद पीर ।
बालजती दृढ़व्रती समकिती दुखदावानलनीर,
गुन अनन्त भगवन्त अन्त नहिं शशि कपूर हिम हीर ।
धानत एक हु गुन हम पावें दूर करें भवभीर ।।[११]

जैन कवियों ने जिस प्रकार भगवान् का गुणगान किया उसी प्रकार उनके समक्ष अपनी लघुता भी प्रकट की तथा अपनी आशा पूरी करने की प्रार्थना भी की।

१०- धानत पद संग्रह, पद २०६

११- हिन्दी पद संग्रह, पद १७१

भूधरदास ने पार्श्वप्रभु का एक सुन्दर रूप चित्रित किया है। वे कहते हैं कि पारस प्रभु के चरण नखों का प्रकाश ऐसा अरुणाभ है जैसे तप रूप हाथी के शीश पर लगा सिन्दूर, राग-द्वेष रूप वन को जलाने के लिए दावानल, ज्ञान के प्रातःकाल का रक्ताभ सूर्य, मोक्षवधू के कुच पर किया गया कुंकुमाभ प्रलेप या खिला हुआ कमल दल। इस प्रकार अनेक गुणों के निवास हे प्रभु! मुझ दीन दास की आसा पूरी करो।

पारस-पद-नख-प्रकाश, अरुन वरन ऐसो।
मानों तप कुंजर के सीसको सिंदूर पूर, राग दोष काननकों, दावानल जैसो।
बोधमई प्रातकाल, ताको रवि उदय लाल, मोक्षवधू-कुचप्रलेप, कुंकुमाभ तैसो।
कुशलवृक्ष दल उलास, इहि विधि बहु गुण निवास[१२]
भूधर की भरहु आस, दीन दास कैसो।

एक अन्य पद में ऋषभदेव की भक्ति में वे लिखते हैं कि जैसे चकोर-चकई चन्द्र रूप भरतार को जपता है वैसे ही मेरी लौं नाभिनन्दन से लगी है। तन जाये, धन जाये, यौवन जाये और यहां तक कि प्राण भी क्यों न चले जायें पर एक प्रभु भक्ति मेरी ज्यों की त्यों बनी रहे। अन्य अनेक देवों की सेवा की पर कुछ नहीं मिला और अपना गांठ का ज्ञान भी खो गया, जैसे खोटे व्यापार में धन डूब जाता है। पुत्र, मित्र, कलत्र सब अपने मतलब के सगे हैं। नरक के कुंए से निकालने वाले श्री जिन ही हैं।

लगी लौं नाभिनन्दन सों।
जपत जेम चकोर चकई चन्द भरता कों।
जाउ तन धन जाउ जोवन प्रान जाउ न क्यों।
एक प्रभु की भक्ति मेरे रहो ज्यों की त्यों।
और देव अनेक सेये कछु न पायो हों।
ज्ञान खोयो गांठि को धन करत कुवनिज ज्यों।

१२- जैन पद संग्रह, भाग ३, पद ४७

पुत्र मित्र कलत्र में सब सगे अपनी गौं ।
नरक कूप उद्धरन श्रीजिन समझ भूधर यौं ।।[१३]

ऐसी प्रतीति होने के बाद भूधरदास भक्ति में विभोर हो कर कह उठते हैं कि अरी रसना ! तू ऋषभ जिनेन्द्र का नाम रट । वे सुर, नर और यक्ष रूप चकोर के लिए चन्द्र के समान हैं । वे नाभिराय के नामी बालक हैं । मरुदेवी के कृपालु कुंवर हैं । वे पूज्य प्रजापति हैं , पुराण पुरुष हैं । संसार को प्रकाशित करने वाली केवलज्ञान-किरण धारण करने वाले हैं । वे नरक का निवारन करने वाले हैं , यह विरद विख्यात है ।वे संसार को तारने वाले हैं । उनका भजन करने से ही निर्वाह होगा । भंवर कमल हो जायेगा ---

रटि रसना मेरी ऋषभ जिनन्द सुर नर जच्छ चकोरन चन्द ।
नामी नाभि नृपति के बाल मरुदेवी के कुंवर कृपाल ।
पूज्य प्रजापति पुरुषपुरान केवल किरन धरें जगभान ।
नरक निवारन विरद विख्यात तारन तरन जगत के तात ।
भूधर भजन किये निरवाह श्रीपद-पदम भंवर ही जाह ।।[१४]

भक्ति में सराबोर भूधर को स्मरण आता है कि प्रभु भक्ति से अनेकों का उद्धार हो गया । वे गद्गद हो कर कह उठते हैं कि मैंने आज आपकी महिमा को जान लिया । अब तक मैंने आपकी महिमा नहीं जानी थी । यदि मैं पहले ही आपकी महिमा को जान जाता तो भव वन में भ्रमते हुए दु:ख न उठाता । आपके नाम के प्रताप से अंजन तथा कीचक के समान पापी भी पार हो गये, ऐसा जैन पुराणों में कहा गया है । हे प्रभु मुझे भी अपनी सेवा (भक्ति) का वरदान दीजिये, क्योंकि मैं याचक हूं और आप दानी हैं --

म्हें तो थाकी आज महिमा जानी ।
अब लौं नहिं उर आनी ।

१३- भूधरविलास, पद १

१४- वही, पद २३

काहे को भ्रम वन में भ्रमते क्यों होते दुखदानी ।
नाम प्रताप तिरे अंजन से कीचक से अभिमानी ।
ऐसी साख बहुत सुनियत है जैन पुराण बखानी ।
भूधर को सेवा वर दीजै मैं जांचक तुम दानी ।। १५

जगजीवन भगवान् को परम उपकारी मानते हैं क्योंकि उन्हीं के कारण उनकी भ्रम-नींद टूटी और धर्म सुन कर मन हुलसित हुआ । वे कहते हैं कि हे प्रभु । आज मेरा मन प्रसन्न हो गया । मैं अब तक मोह नींद में सो रहा था, आप ने आज मुझे जगा दिया । धर्म का उपदेश दे कर तुमने मेरा हृदय आनन्दित किया, यह तुम्हारा बहुत बड़ा उपकार है । तुमने मेरा भ्रम दूर करके मुझे आत्मा में विचरण करने का भेद बताया । इससे मुझे सुख प्राप्त हुआ । मैंने आत्मस्वरूप का ध्यान धारण कर लिया है । इससे कर्म नाश होंगे और मोक्ष प्राप्त होगा ।

प्रभुजी म्हारो मन हरप्यो छै आजि ।
मोह नींद में सूतो हो मैं, थे जगायो आजि प्रभुजी ।
धरम सुनायो मेरो चित हुलसायो, थे कीन्हुं उपगार ।
निज परणति प्रभु भेद बतायो जी, भरम मिटायो सुख पायो, थे कीन्हुं हितकार
निज चरणां को ध्यान धारयो जी, करम नसाये सिवपाये जगजीवन सुखकार । १६

रूपचन्द ने भगवान् के दर्शन का काव्य और अध्यात्ममय चन्द्र-चकोर चित्र उपस्थित किया है । मुखचन्द्र का रूपक प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि प्रभु के सुन्दर मुख रूपी चन्द्रमा को देख कर नेत्र रूपी नील कमल विकसित हो गये हैं और मकरन्द बिखेर रहे हैं । चित रूपी चकोर अत्यन्त आनन्दित हो रहा है और निरन्तर देखते रहने पर भी तृप्त नहीं होता ।प्रभु मुखचन्द्र को देख कर सुख समुद्र बढ़ गया है

१५- भूधर विलास,पद ४२
१६- हिन्दी पद संग्रह, पद ६६

और उसमें दु:ख द्वन्द्व कहां गये, पता भी नहीं चलता। हृदय का जो अन्धकार था, वह भी नष्ट हो गया। स्व और पर का ज्ञान हुआ। इस प्रकार मेरा सब कार्य बन गया। प्रभु के मुख रूपी चन्द्र से वचन-सुधारस की बूंदों की वर्षा होती है, जिनसे सब संताप दूर हो गये हैं।

देखि मनोहर प्रभु मुख चंद।
लोचन नील कमल ए विगसे मुंचत है मकरंद।
देखत देखत तृपति होत नहिं, चित्त चकोर अति करत आनन्द।
सुख समुद्र बाढ्यो सुन जानो, कहां गयो ता महि दुख दंद।
अंधकार जु हुतो अन्तरगत, सोऊ नियट परयो यह मंद।
सुपर प्रकास भयो सब मन्यो, मेरो बन्यो सबहि विधि चंद।
बरसत बचन सुधारस बूंदनि, भयो सकल संताप निकंद।[१७]
रूपचन्द तन मन सहताने, सुकहत बनहि यह सब छंद।

प्रभु के मुख को चन्द्र की उपमा देने के बाद रूपचन्द्र प्रभु के चरण-कमलों में रमने की बात कहते हैं और साथ ही इसका रहस्य भी उद्घाटित करते हैं। वे कहते हैं कि -- यदि इन्द्र, चक्रवर्ती, धरणेन्द्र आदि के मनवांछित सुख चाहते हो तो प्रभु के चरण-कमलों में मन को रमाओ। बाह्य परिग्रहों को त्याग कर कठिन आचरण के भार को कौन उठाये तथा बारह प्रकार के तप करके कठिन परीषहों को कौन सहन करे। भगवान् की भक्ति की अति विचित्र महिमा कहां तक कही जा जाये अर्थात् भगवद्-भक्ति की महिमा अकथनीय है। रूपचन्द कहते हैं कि मेरे हृदय में तो ऐसा निश्चय है कि भगवान् की भक्ति से तत्काल परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

प्रभु के चरन कमल रमि रहिये।
सक्र चक्रधर धरन प्रमुख सुख, जो मन वांछित चहिये।
कत बहिरंग संग सब परिहरि, दुभर चरन भरु वहिये।
अरु कत बारह विधि तपु तपकरि, दुसह परिसह सहिये।

१७- हिन्दी पद संग्रह, पद ५६

परम विचित्र भांति की महिमा, कहत कहा लगि कहिये ।
रूपचन्द चित निश्चै ऐसो, तुरित परम पद लहिये ।[१८]

रूपचन्द कहते हैं कि वास्तव में प्रभु की महिमा को समझना आसान नहीं है । जो मोही मूढ़ नय विभाग को नहीं जानता उसकी स्थिति अन्धों द्वारा हाथी देखने जैसी है । वे कहते हैं कि — हे प्रभु तेरी महिमा को कोई नहीं जान पाया । मूर्ख मनुष्य नयविभाग के जाने बिना मोह के कारण बहिर्मुख होकर दौड़ता फिरता है और तुम्हारे स्वरूप को अनेक युक्तियां दे-दे कर विविध रूप सेनिरूपित करता है । जैसे हाथी को देखने वाले अन्धे अपनी अपनी कल्पना से हाथी के स्वरूप का निरूपण करके झगड़ते हैं । वास्तव में तुम्हारा स्वरूप तो विश्वरूप, चिदानन्द, सकास, घट-घट व्यापी है । भिन्न-भिन्न भावों के अनुसार वह भिन्न-भिन्न दिखाई देता है, जैसे सूर्य की कान्ति जल, थल आदि भिन्न पदार्थों में भिन्न रूप में दिखाई देती है । सुर, नर और फणीन्द्र बिना किसी अपेक्षा के उसके चरणोंकी सेवा करते हैं । मन, वचन, काय से अलख तथा निरंजन होते हुए भी वह गुणों का सागर तथा अतिशय युक्त है, उस प्रभु को अनुपम के द्वारा ही देखा जा सकता है ---

प्रभु तेरी महिमा जानि न जाई ।
नय विभाग बिन मोह मूढ़ जन मरत बहिर्मुख धाई ।
विविध रूप तव रूप निरूपत, बहुते जुगति बनाई ।
कलपि कलपि गज रूप अंध ज्यौं झगरत मत समुदाई ।
विश्वरूप चिद्रूप सकास, घट घट रह्यउ समाई ।
भिन्न भाव व्यापक जल थल ज्यौं अपनी द्युति दिनराई ।
मारयउ मन जारयउ मनमथु, अरु प्रतिपाले खटकाई ।
बिनु प्रसाद बिन सासति सुर नर फणि पति सेवत पाई ।
मन वच करन अलख निरंजन, गुणसागर अति साई ।
रूपचन्द अनुपम करि देखहुं, गगन मंडल मधु लाई ।।[१९]

१८- हिन्दी पद संग्रह, पद ३१
१९- वही, पद २७

जिनेन्द्र का स्वरूप ही ऐसा मनभावन है कि आंखों में बस जाता है। जग जीवन कहते हैं कि मेरे नेत्रों में श्रीजिनदेव की मूर्ति समा गयी है। प्रभु का रूप अद्भुत है। उनकीशोभा अनुपम है। वह राग-द्वेष से पूर्णतया मुक्त हैं। प्रभु की इस छवि पर करोड़ों कामदेव बलिहारी जाते हैं। उनकी शोभा को देख-देख कर आनन्द रसकी वर्षा होती है अर्थात् अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है।प्रभु की वाणी को सुन कर स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग प्रकट हो जाता है --

मूरतिजी जिनदेव की, मेरे नैनन माहि बसी जी।
अदभुत रूप अनोपम है छवि, रागदोष न तनकसी।
कोटि मदन वारूं या छवि पर, निरखि निरखि आनन्द फरवरसी।
जगजीवण प्रभु की सुनि वाणी, सुरग मुकति मादरसी।[२०]

भगवान् का ऐसा रूप देख कर जगजीवन मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे जिया। अपने चित में यही निश्चय कर कि अरहंत का नाम जपो। जग में भटकता मत फिर, जिन-चरणों के संग में लग। जिन-धर्म में जो, तप, व्रत और संयम बताये गये हैं, उन्हीं का नित्यप्रति पालन कर।प्रभु के गुणगान द्वारा मुक्ति-वधू के सुख को मांगना है --

ये ही चित धारणां, जपिये श्री अरिहंत।
प्रमत फिरै मति जग में जिया, जिन चरण संग लागणां।
जिन धर्म तैं जो तप व्रत संजय, सोही नित-प्रति पालणां।
जगजीवन प्रभु के गुण गाकरि, मुक्ति वधू सुख जाचणां।[२१]

इस प्रकार जगजीवन प्रभु के नामजप की महिमा का प्रतिपादन करके निरन्तर नाम रटने की बात तो कहते हैं, पर साथ ही तप, व्रत और संयम के पालन की भी बात कहते हैं। वे इस बात के लिए भी सावधान करते हैं कि प्रभु के गुण गा कर कोई तुच्छ सांसारिक याचना न कर लेना प्रत्युत मुक्तिवधू के सुख की याचनाकरना

२०- हिन्दी पद संग्रह, पद १०१
२१- वही, पद १०६

क्योंकि वही वास्तविक और शाश्वत सुख है ।

जगतराम के पदों में भक्ति की भावप्रवणता और उद्रेक कुछ और ही है । वे प्रभु की विनती करते करते विभोर भी होते हैं और अपनी अधीरता व्यक्त करते हुए 'मीठे ताने' भी देते हैं । वे कहते हैं कि हे प्रभु, हमारी विनती अब तो सुनो । मैं यह जानता हूं कि मेरे जन्म-मरण के दु:खों को तुम ही दूर करोगे पर हे प्रभु, मैं तुमसे निरन्तर विनती कर रहा हूं । तुम्हें टेर लगा रहा हूं, किन्तु तुम मेरी ओर देखते तक नहीं । इस प्रकार तो तुम्हारा सुयश बिगड़ जायेगा । मैं दीन हूं और तुम दीन बन्धु हो । इस सम्बन्ध का निर्वाह कब करोगे , अर्थात् मेरे ऊपर कृपा कब करोगे । तुम्हारा पतित-उधारक नाम प्रसिद्ध है । अपने यश के अनुसार कार्य कब करोगे। मैं तुम्हारे चरणों की शरण में आया हूं , तुम्हारे विरद की लाज इसी में है कि मेरा निस्तार करो, कल्याण करो --

अहो प्रभु हमरी विनती अब तो अधारोगे ।
जामन मरन महा दुख मोकों सो तुम ही टारोगे ।
हम टेरत तुम हेरत नाहीं, सों तो सुजस बिगारोगे ।
हम हैं दीन, दीनबन्धु तुम यह हित कब पारोगे ।
अधम उधारक विरद तुम्हारो, करणी कहा विचारोगे ।
चरन सरन की लाज यही है जगतराम निस्तारोगे ।।[२२]

जगतराम को यह पूर्ण विश्वास है कि प्रभु के अतिरिक्त और दूसरा कोई सहायता करने वाला नहीं है । सभी स्वार्थ के साथी हैं । इसीलिए वे सम्पूर्ण आस्था के साथ प्रभु की शरण में समर्पित हैं । वे कहते हैं कि प्रभु के बिना कोई भी हमारा सहायक नहीं है । अन्य सभी अपने स्वार्थ के साथी हैं । हे प्रभु । मात्र तुम ही दूसरे का हित करने वाले हो । हमारी ही भूल हमारे लिये बहुत दु:खदायी सिद्ध हुई । मैंने तुम्हें भुला कर विषय, कषाय रूपी सर्पों का साथ किया । उनके डसने पर विष का प्रभाव फैल गया और मेरे सारे शरीर में मोह की लहर चढ़ गयी । उस मोह रूपी

२२- हिन्दी पद संग्रह, पद ११७

लहर को उतारने की शक्ति केवल तुम्हारी भक्ति रूपी जड़ी में ही है, ऐसा मुझे ज्ञानी गुरु ने बताया है। इसीलिए मैं पूरे विश्वास के साथ तुम्हारी शरण में आया हूं। अब तुम्हारी साहिबी इसी में है कि सेवक की सहायता करो।

प्रभु बिन कौन हमारी सहाई।
औरसबै स्वारथ के साथी, तुम परमारथ भाई।
भूलि हमारी ही हमको इह, भई महा दुखदाई।
विषय कषाय सरप संग सेयो, तुमरी सुधि बिसराई।
उन डसियो विष जोर भयो तब, मोह लहरि चढ़ि आई।
भक्ति जड़ी ताके हरिवे को गुरु गारुड़ बताई।
याते चरन सरन आये हैं, मन परतीति उपाई।
अब द्यानत राम सहाय किये ही, साहिब सेवक तांई। [२३]

महाचन्द एक ही पद में सच्चे देव का स्वरूप और उनकी सेवा के फल को बड़े ही आत्म-विश्वास और लौकिक सेवा के उदाहरण के साथ व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हम ऐसे ठाकुर के चाकर हैं जिसके मन में तनिक भी राग द्वेष नहीं है। जब हम ऐसे देवता के चाकर हैं तो कर्म-शत्रु हमारा क्या बिगाड़ लेंगे। जो देव अठारह दोषों से रहित हैं, जो छियालीस गुणोंसे युक्त हैं, जो संसार को सात तत्वों का उपदेश देते हैं, वही हमारे ठाकुर हैं। जग में दूसरोंकी चाकरी में कोई फल नहीं दिखता। इसी कारण आदमी थक जाता है। हमारे ठाकुर की चाकरी करने से यह फल मिलता है कि हम भी जगत के ठाकुर बन जाते हैं। जिसकी चाकरी किना के कोई सुख नहीं मिल सकता। इसलिए हम उसकी सेवा करेंगे। उस सेवा से हमारे खोटे कर्मों का विपाक नहीं होगा। वे ऐसे कृपालु हैंकि उनकी कृपा से हम नरक आदि गतियों का नाश करके मोक्ष प्राप्त करेंगे। इसीलिए हम चन्द्रमा के समान श्री जिनराज की स्तुति करेंगे।

२३- हिन्दी पद संग्रह, पद १२३

राग-द्वेष जाके नहि मन में हम ऐसे के चाकर हैं।
जो हम ऐसे के चाकर तो कर्म रिपु हम कहा करि हैं।
नहिं अष्टादश दोष जिन्हें में छियालिस गुण आकर हैं।
सप्त तत्त्व उपदेशक जग में सोही हमारे ठाकुर हैं।
चाकरि में कछु फल नहिं दीसत तो नर जग में थाकि रहे।
हमरे चाकरि में है यह फल होय जगत के ठाकुर हैं।
जांकी चाकरि बिन नहि कछु सुख तातैं हम सेवा करिहैं।
जाके करणों तैं हमरे नहिं खोटे कर्म विपाक रहैं।
नरकादिक गति नाश मुक्तिपद लहैं सु ताहि कृपा धरहैं।
चंद्र समान जगत में पंडित महाचन्द्र जिन स्तुति करिहैं।[२४]

बुधजन अपने आराध्य की महत्ता के प्रति अधिक आस्थावान् हैंऔर दूसरे देवों की अपेक्षा उनकी श्रेष्ठता को भी समझते हैं। इसीलिए वे जन्म-जन्म तक उनकी सेवा करने की बात कहते हैं। अपने आराध्यदेव से अपने कष्ट दूर करने की विनती करते हुए वे कहते हैं कि हे सब देवों के देव ! श्री जिनराज ! मेरी तुमसे यह विनती है। अन्य सभी देवता किसी न किसी प्रकार के दोष से युक्त हैं, किन्तु तुम निर्दोष हो और स्वयं ही संसार के प्राणियों का कल्याण करने वाले हो। मैंने अनेक गतियों में अनेक बार जन्म धारण करके अत्यन्त दुःख उठाये हैं। हे प्रभु अब मेरे भव-भ्रमण जन्य संकट को दूर कर दो। मैं भव-भव में तुम्हारे चरणोंकी सेवा करूंगा।

म्हारी मेरी तुमसौं वीनती सब देवनिके देव।
ये दूषणजुत तुम निरदूषन जगत हितू स्वयमेव।
गति अनेकमैं अति दुख पायौ लीने जन्म अछेव।
हो संकट हर दे बुधजनकौं भव भव तुम पदसेव।[२५]

२४- हिन्दी पद संग्रह, पद ३३७

२५- बुधजन विलास, पद ८७

दौलतराम भगवान् से अर्ज भी करते हैं तो भी अपनी बात को युक्तिपूर्वक पूरी दृढ़ता के साथ प्रस्तुत करते हैं। किसी को अकेला पा कर बहुत से लुटेरे मिलकर लूट लें तो वह अपना न्याय कराने जगपाल के पास न जाये तो कहां जाये। दौलतराम कहते हैं कि हे जिनराज ! मेरी एक अरज सुनिये। तुम बिना स्वार्थ जग का उपकार करते हो। आठ कर्मों ने मुझे दुखिया कर दिया है। हमारी ज्ञानादि निधि लूट ली है, उसे वापस मुझे दिलाइए। मैं अपने को भूल कर उन्हीं कर्मों के साथ लग गया हूं। उनके द्वारा इन्द्रिय विषयों के रस में पग गया हूं। इसी कारण जन्म और बुढ़ापे के वन में दग रहा हूं। समता के जल से उसे शीतल कीजिए।

हे प्रभु ! ये कर्म अनेक हैं और मैं अकेला हूं। चारों गतियों में विपत्तियों के बीच मुझे पेल रहे हैं। भाग्य से तुम से भेंट हो गयी। तुम तो न्याय करने वाले हो। तुम दयालु हो और हमारा बेहाल हो रहा है। हे जग का पालन करने वाले अपना विरद सम्हालो। ढील न करो, शीघ्र ही भव के फेर का निवारण कीजिए।

तुम सुनियो श्रीजिननाथ, अरज इक मेरी जी।
तुम बिनहेत जगत उपकारी, वसु-कर्मन मोहि कियो दुखारी।
ज्ञानादिक निधि हरी हमारी, द्यावो सो मम फेरी जी।
मैं निज भूल तिनहि संग लाग्यो, तिन कृत करन विषय रस पाग्यो।
तातैं जन्म-जरा दवदाग्यो, कर समता सम नेरी जी।
वे अनेक प्रभु मैं जु अकेला, चहुंगति विपतिमांहि मोहि पेला।
भाग जगे तुमसौं भयो मेला, तुम हो न्याय निवेरी जी।
तुम दयाल बेहाल हमारो, जगतपाल निज विरद सम्हारो।
ढील न कीजे वेग निवारो, दौलतनी भवफेरी जी।[२६]

बुधजन अपनी असहायता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु ! मेरा उद्धार करो। मेरा कोई नहीं है। अनादि काल से अकेला ही भारी दुख भुगत रहा हूं। यह

२६- दौलत विलास, पद ११२

सारा संसार मतलब का है। एक तुम्हीं हो जो मतलबी नहीं हो। संसारी जन मिल कर मुझे संसार में ही बांधे रखना चाहते हैं। अकेले तुम्हीं काढ़नहार हो। मैं आपकी शरण आया हूं। अपराध क्षमा कर संसार समुद्र में डूबते हुए मेरा हाथ पकड़ कर निकाल लीजिए --

थे ही मौनैं तारो जी प्रभु जी कोई न हमारो।
हूं एकाकी अनादि कालतें दुख पावत हूं भारी जी।
बिन मतलब के तुम ही स्वामी मतलब को संसारो।
जा जन मिलि मोहि जगमें राखैं तू ही काढ़नहारो।
हुबजन के अपराध मिटावो शरन गह्यो है थारो।
भवदधिमाहीं डूबत मोकों कर गहि आप निकारो।[२७]

संसार समुद्र में डूबते हुए को प्रभु के वचन अवलम्बन के समान हैं। हुबजन संसार सागर में मिथ्या मत को जल, मोह को मकर और भ्रम को भंवर बताते हुए कहते हैं कि हे प्रभु, मैंतो तुम्हारी शरण आया हूं; मुझे तारते क्यों नहीं। कर्म चारों गतियों में फिरा रहे हैं। बड़े भाग्य से तुम्हारा दर्शन मिला है। इस संसार-सागर में मिथ्यात्व रूपी जल है, मोह रूप मगर हैं और भ्रम रूप भंवर हैं, जिनमें मैंने गोता खाया है। तुम्हारे वचन का आलम्बन पाकर हृदय हर्षित हो गया है। मेरा उद्धार कीजिए --

तारो क्यों न तारो जी म्हें तो थाकें शरना आया।
विषना मोकों चहुंगति फेरत बड़े भाग तुम दरशन पाया।
मिथ्यामत जल मोह मकरजुत परम भौर में गोता खाया।
तुम मुख वचन अलंबन पाया अब हुबजन उरमें हरषाया।[२८]

जो दीनबन्धु के नाम से प्रसिद्ध है,उसे अपने यश का ध्यान तोड़ना ही

२७-हुबजन विलास, पद ३६
२८-वही, पद २२

चाहिए । उसके भक्त दुखी होते रहें, विनती करते रहें और वह ध्यान भी न दे यह कैसे हो सकता है ।

जगजीवन प्रभु से भव-भ्रमण से मुक्त कराने की विनती करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु । मेरा जन्म-मरण का कष्ट दूर कर दो । अब तक मैंने चारों गतियों में जन्म धारण करके बहुत दुःख सहन किये हैं । हे प्रभु तुम निःस्वार्थ भाव से दीनों पर दया करने वाले दीनबन्धु हो । अपने इस यश, अपनी इस रीति का पालन करो । हे प्रभु तुम सबको सुखी करने वाले हो, मुझे भी भव-भ्रमण से मुक्ति दिलादो और शाश्वत सुख प्रदान करो ।

आवण मरण मिटावो जी ।
भ्रमत फिरयो चहुंगति दुख पायो, सोही चाल छुडावो जी ।
विनही प्रयोजन दीनबन्धु तुम सोही विरद निबाहो जी ।
जगजीवण प्रभु तुम सुखदायक, मोकूं शिवसुख दयावो जी ।[२६]

भव आताप की पीड़ा साधारण नहीं है । उस असह्य ताप को प्रभु की दया रूप अमृत ही दूर कर सकता है । दौलतराम कहते हैं कि हे वीर प्रभु । मेरी भव-भ्रमण की पीड़ा को दूर कर दो । मैं दुःख-दाह से दग्ध हूं और तुम दया रूपी अमृत के समुद्र हो, इसीलिए तुम्हारे पास आया हूं । तुम परमेश हो, मोक्ष मार्ग के दिखाने वाले हो, तथा मोह रूपी दावानल के लिए जल तुल्य हो । तुम निःस्वार्थ भाव से जग के प्राणियों का कल्याण करने वाले हो तथा शुद्ध चिदानन्दमय हो । गणपति भी तुम्हारे ज्ञान-समुद्र का पार नहीं पा सके । तुम गुणों के सागर हो । मैंने नाना प्रकार के शरीर धारण करके जो अनेक प्रकार की विपत्तियां सही हैं, उन्हें मैं भूल गया हूं । तुम्हारे गुण चिन्तवन द्वारा उन सभी का नाश हो जाता है तथा सभी भय भी दूर हो जाते हैं जैसे पवन के द्वारा बादलों का नाश हो जाता है, करोड़ों बार की यही एक विनती है कि कर्मों के कारण मैं बहुत दुःखों को सहन कर रहा हूं । अब तुम मेरे कर्मों की जंजीर काट कर मुझे इस भव-भव की वेदना से मुक्त कर दो ।

२६- हिन्दी पद संग्रह, पद १०४

हमारी वीर हरो भवपीर ।
मैं दुख तपित दयामृतसर तुम लखि आयो तुम तीर ।
तुम परमेश मोक्षमादर्शक मोहदवानलनीर ।
तुम बिनहेत जगत उपकारी शुद्ध चिदानन्द धीर ।
गणपति ज्ञान समुद्र न लघे तुम गुनसिंधु गहीर ।
याद नहीं मैं विपति सही जो धर धर अमित शरीर ।
तुम गुनचिन्तत नशत तथा भय ज्यों घन चलत समीर ।
कोटवारकी बरज यही है मैं दुख सहूं अधीर ।
हरहु वेदनाफन्द दौलकी कतर कर्म अ जंजीर ।[३०]

दौलतराम कहते हैं कि मैं तुम्हारी शरण छोड़ कर और कहां जाऊं। करुणा करके मेरी अनादि की भूल को माफ करो। मैं भवसागर में डूब रहा हूं, तुम्हारे बिना मुझे और कौन पार उतारेगा। तुम्हारे जैसा और कोई शक्तिशाली दूसरा देव नहीं है, इसीलिए तुम्हारे सामने यह हाथ फैला रहे हैं। मेरे जैसे अनेक अधम उबार दिये, ऐसा गुरु और शास्त्र वर्णन करते हैं। दौलत कवि कहते हैं कि मैं तुम्हारी शरण आया हूं, मुझे भव से पार करो।

जाऊं कहां तज शरण तिहारी ।
इक अनादितनी या हमारी माफ करो करुणा गुन धारे ।
डूबत हौं भवसागर में अब तुम बिन को मोहि पार निकारे ।
तुम सम देव अवर नहिं कोई तातैं हम यह हाथ पसारे ।
मोसम अधम अनेक उबारे बरनत हैं गुरु शास्त्र अपारे ।
दौलत को भवपार करो अब आयो है शरनागत थारे ।[३१]

भव-भव के दुःखों के फैलने का कारण समझ में तभी आता है जब भव-

३०-दौलत विलास, पद १६
३१-हिन्दी पद संग्रह, पद २५६

सागर से पार उतारने वाले प्रभु के चरणों का सान्निध्य प्राप्त होता है और तभी यह पता चलता है कि आत्मस्वरूप को भूल कर विभाव को अपना कर ही फिर दुखी है। दौलतराम कहते हैं कि हे जिनराज। मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। अपने स्वभाव को छोड़ कर विभाव भाव के कारण मैं बहुत काल से दुःख उठा रहा हूं तथा मैं ने अपनी स्वाभाविक निधि (आत्मनिधि) को भुला दिया है। तुम्हारे सुन्दर रूप को देख कर, तुम्हारे गुणों को अपना कर तथा तुम्हारी वाणी को सुन कर प्राणी मोक्ष मार्ग पर चलने लगते हैं, मेरे कार्य के कारण भी तुम हो, मैंने अपने हृदय में तुम्हारी भक्ति को धारण कर लिया है। मुझे अनन्त जन्मों के बाद तुम्हारे दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हे प्रभु मैं विनती करता हूं मुझे भव-समुद्र से पार लगा दो। पर पदार्थों में मेरी इष्ट तथा अनिष्ट कल्पना का अब तुम शीघ्र ही अन्त कर दो जिससे मैं स्वस्वभाव में रमण करूं --

मैं आयो जिन शरन तिहारी।
मैं चिरदुखी विभाव भावतें स्वाभाविक निधि आप विसारी।
रूप निहार धार तुम गुन सुन वैन होत भविशिवमगचारी।
यों भवकारज के कारन तुम तुमरी सेव स्व उरधारी।
मिल्यो अनन्त जन्म में अवसर अब विनऊं दे भवसरतारी।
परमें इष्ट अनिष्ट कल्पना, दौल कहे झट मेट हमारी।[३२]

भक्त का मन भगवान् की शरण के सिवा अन्यत्र नहीं लगता। उसके लिए तो यही सबसे बड़ा ठौर है। धानतराय कहते हैं कि अब तो हम भगवान् नेमि नाथ की शरण में आ गये हैं, प्रभु की शरण को त्यागकर अन्यत्र मेरा मन नहीं लगता। आप समस्त प्राणियों के पापों को नष्ट करने वाले हैं आपका 'तारन-तरन' (दीनों को पार लगाने वाले) नाम प्रसिद्ध है। इन्द्र, चन्द्र, फणीन्द्र आपका ध्यान करते हैं। जिससे वे सुख पाते हैं तथा सभी दुःख दूर हो जाते हैं। भ्रम रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए आप सूर्य के समान हैं तथा कर्मों का क्षय करने वाले दीपक हैं। आप

३२- दौलत पद संग्रह, पद ४०

के गुणों का वर्णन करने में गणधर तथा इन्द्रादि भी असमर्थ हैं। तीन लोक में आपके समान कोई नहीं है। हे प्रभु मैं आपका सेवक हूं तथा आप दयानिधि हैं। आप अपने प्रण के अनुसार मुझ पर दया करेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है।

अब हम नेमिजी की शरन।
और ठौर न मन लगत है छाड़ि प्रभु के शरन।
सकल भवि-अघ दहन बारिद विरद तारन तरन।
इन्द्र चन्द फनिन्द ध्यावैं पाय सुखदुखहरन।
भरम-तम-हर-तरनि दीपति करम गन खयकरन।
गनधरादि सुरादि जाके गुन सकत नहिं वरन।
जा समान त्रिलोकमें हम सुन्यौ और न करन।[33]
दास द्यानत दयानिधि प्रभु क्यौं तजैंगे परन।

सुवचन कहते हैं कि हे पतितोंका उद्धार करने वाले प्रभु! मैं पतित आपसे विनती कर रहा हूं, मेरी विनती सुनिये। तुम्हारे समान इस संसार में और कोई भी देव नहीं है, जिससे मैं विनती करूं। अनादि काल से अविद्या के कारण मेरे हृदय में राग-द्वेष बहुत बढ़ गये हैं। इसी के परिणाम स्वरूप कर्म-बन्धन के कारण जन्म-मरण के दुःख सहन करने पड़ते हैं। मुझे इस संसार में ऐसे लोग मिले जो इस संसार में ही भरमाने की बातें बताते रहे अर्थात् प्रवृत्ति की ओर मुझे मोड़ते रहे। तुम बिना किसी स्वार्थ के मोक्षमार्ग को देने वाले तथा निज स्वभाव में परिणमन करने की बात बताते हो। तुम्हें जाने बिना मैं अनन्त काल तक भव-भ्रमण के कष्ट उठाता रहा। हे प्रभु अब मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि मुझे संसार समुद्र से पार लगा दो।

पतित उधारक पतित रटत है सुनिये अरज हमारी हो।
तुमसो देव न आन जगत में जासौं करिये पुकारी हो।
साथ अविद्या लगि अनादि की रागदोष विस्तारी हो।
याही तै सन्तति करमनिकी जनम मरन दुखकारी हो।

33- द्यानत विलास, पद १

मिले जात जन जो भरमावे कहे हेत संसारी हो ।
तुम बिन कारन शिवमगदायक निज सुभावदातारी हो ।
तुम जाने बिन काल अनन्ता गति गति के भव धारी हो ।
अब सनमुख बुधजन जांचत है भवदधि पार उतारी हो ।[33क]

अन्य देवों की तुलना में अपने आराध्य की महत्ता व्यक्त करते हुए भूधर दास कहते हैं कि हे स्वामी ! तुम्हारीशरण ही सच्ची है । तुम समर्थ, शान्त एवं समस्त गुणों से युक्त हो । इसीलिए मुझे तुम पर बहुत भरोसा है । तुमने जग के शत्रु जन्म और जरा को जीत लिया है और मरने की रीति को तोड़ दिया है अर्थात् तुम मुक्त हो गये हो । हमें भी अजर, अमर बना कर हमारी आशा पूरी करो । जो देवता बार-बार जन्म ले कर अनेक प्रकार के शरीर धारण करते हैं वे संसारी हैं । ऐसे देव तो स्वयं ही भिखारी है, वे दूसरे की दरिद्रता कैसे दूर कर सकते हैं --

स्वामी जी सांची सरन तुम्हारी ।
समरथ शांत सकल गुनपूरे भयो भरोसो भारी ।
जनम जरा जग बैरी जीते, टेव मरन की टारी ।
हमहू को अजरामर करियो भरियो आस हमारी ।
जनमें मरें धरें तन फिरि फिरि सो साहिब संसारी ।
भूधर पर दालिद क्यों दलि है जो है आप भिखारी ।[34]

प्रभु की इसी महत्ता पर रीझ कर भूधरदास कहते हैं कि प्रभु के गुण गा लो । ऐसा सुन्दर अवसर फिर कभी नहीं मिलेगा । मनुष्य-भव का योग अत्यन्त कठिन है तथा संतों की संगति भी कठिन है । तुझे ये दोनों ही प्राप्त हैं इसलिए तेरी बात बन गयी है । अब तू अरहन्त भगवान् का भजन कर । पहले अपने चित्त को वश में करो फिर काम, क्रोध आदि दुर्गुणों के मैल को साफ करो । फिर प्रीति की

३३क- बुधजन विलास, पद ३

३४- भूधर विलास, पद ५३

फिटकरी का उपयोग करके मन को स्मरण के रंग में रंग लो। धन जोड़ कर खजाना भरने तथा परिवार को बढ़ाने से कोई फायदा नहीं है। हाथी पर बैठ कर तुने क्या बड़ा काम कर लिया। प्रभु के नाम-स्मरण बिना तेरे जीवन को धिक्कार है। यह शिक्षा व्यवहारपरक है तथा निश्चय की साधन रूप है। पहले प्रथम पैढ़ी पर पैर रखो तभी तुम पूरी सीढ़ी चढ़ पाओगे।

प्रभु गुन गाय रे, यह औसर फेर न पाय रे।
मानुष भव जोग दुहेला दुर्लभ सतसंगति मेला।
सब बात भली बन आई अरहन्त भजौ रे भाई।
पहले चित-चीर संभारो कामादिक मैल उतारो।
फिर प्रीति फिटकरी दीजे, तब सुमरन रंग रंगीजे।
धन जोर भरा जो कूवा परवार बढ़ें क्या हूवा।
हाथी चढ़ि क्या कर लीया प्रभु नाम बिना धिक जीया।
यह शिक्षा है व्यवहारी निहचै की साधन हारी।
भूधर पैढी पग धरिये तब चढ़ने को चित करिये।[35]

दौलतराम जब विभोर हो कर भगवान् को पुकार पुकार कर विनती करते हैं तो जैसे भक्ति साकार हो उठती है। वे कहते हैं कि हे प्रभु! मुझे भव-भव का दुखिया जान कर मेरी सुधि लो। तुम तीन लोक के स्वामी हो तथा समस्त जीवों (तीन लोक के) के दुःख को दूर करने वाले हो। तुम्हारा यश अपार है। गणधरादि को तुम्हारी शरण में जाते देख कर मैंने भी तुम्हारी शरण ली है। कर्म-शत्रु ने मेरी जो दुर्दशा की वह तुम जानते हो। उसको याद करके करोड़ों कटारियों के चुभने की पीड़ा के समान दुःख होता है। निगोद की अवस्था में एक उच्छ्वास में १८ बार जन्म-मरण के दुःख का वर्णन असम्भव है। मोह रूपी बलवान् शत्रु ने एक क्षण के लिए भी तुम्हारी सुखदायी भक्ति नहीं करने दी। अब भाग्योदय से वह मोह रूपी दुष्ट मंद हुआ है, क्षीण हुआ है तभी मैं तुम्हारे दर्शन पा सका। यद्यपि तुम वीतरागी हो तथापि तुम शिवमग (मोक्ष मार्ग) को दिखाने में उसी प्रकार निमित्त हो जैसे सूर्य

३५- भूधरविलास, पद ४०

की किरण मार्ग दिखाने में अनिवार्य निमित्त होती है। तुमने नाग, बकरा, गज, बाघ तथा दुष्ट भील जैसे पापियों का उद्धार किया है। हे प्रभु मैं तुम्हारे चरणों में शीश झुका कर विनती कर रहा हूं कि अब मुझ पापी की बारी है, मुझे भी अब पार लगा दो --

सुधि लीज्यो जी म्हारी, मोहि अतिदुखिया जानके।
तीन लोकस्वामी नामी तुम त्रिभुवन के दुखहारी।
गणधरादि तुम शरन लहैं लख लीनी शरन तिहारी।
जो विधि अरी करी हमरी गति सो तुम जानत सारी।
याद किये दुख होत हिये ज्यों, लागत कोट कटारी।
लब्धि अपर्याप्त निगोद में एक उसास मंझारी।
जनम-मरण अठदुगुन विथा की कथा न जात उचारी।
मोह महारिपु नेक न सुखमय, होन दई सुधि थारी।
सो दुठ बंध पर्यो भागन तैं, पाये तुम जगतारी।
यद्यपि विरागि तदपि तुम शिवमा, सहज प्राट करतारी।
ज्यों रवि किरन सहज मा दर्शक यह निमित्त अनिवारी।
नाग छाग गज बाघ भील दुठ, तारे अधम उधारी।
शीस नवाय पुकारत अबकै `दौल` अधम की बारी।[३६]

भक्ति में आराध्य के महत्व और अपने दैन्य का अनुभव परम आवश्यक अंग है। आराध्य की महत्ता के अनुभव के साथ ही अपनी दीनता का आभास हुए बिना नहीं रहता। किन्तु भक्त की दीनता किसी चाटुकारी भाव से संचालित नहीं होती, क्योंकि उसमें आराध्यमय हो जाने की आकांक्षा के अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा अवशिष्ट नहीं रह जाती है। अतः दरबारी कवियों की दीनता और भक्त कवियों की दीनता में अन्तर है।

दीनता का अर्थ `घिघियाना` नहीं है, अपितु आराध्य के गुणों से

३६- दौलत विलास, पद ५४

प्रभावित हो कर अपनी विनम्रता अभिव्यक्त करना है। चापलूसी स्वार्थजन्य होती है, जब कि दीनता में भक्ति-भाव ही प्रधान है। चापलूसी में विवशता है और दीनता में स्वत: प्रेरकता। दीन का हृदय पावन होता है, जब कि चापलूस का अपावन।

भूधरदास के पदों में 'दीन दयालु' शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है। एक स्थान पर उन्होंने भगवान् जिनेन्द्र को सम्बोधन करते हुए लिखा है, "हे जगत गुरु! हमारी एक अरज सुनिए। तुम दीनदयालु हो और मैं संसारी दुखिया हूं। इस संसार की चारों गतियों में घूमते हुए मुझे अनादिकाल बीत गया और किंचिन्मात्र भी सुख नहीं पा सका। दु:ख ही दु:ख मिलते रहे। हे जिन! तुम्हारे सुयश को सुन कर अब तुम्हारे पास आया हूं। तुम संसार के नीति-निपुण राजा हो, हमारा न्याय कर दीजिए।[३७]

धानतराय ने विनयभरा उपालम्भ, अपने दीनदयालु भगवान् को दिया है। उन्होंने कहा, "हे प्रभु तुम दीनदयालु कहलाते हो किन्तु स्वयं तो मुक्ति में जा बैठे हो और हम इस संसार में मर-खप रहे हैं। हम तो मन और वचन से तीनों काल तुम्हारा नाम जपते हैं और तुम हमें कुछ नहीं देते। बताओ फिर हमारा क्या हाल होगा। हम भले बुरे जो कुछ भी हैं, तुम्हारे भक्त हैं और तुम हमारी चाल को जानते हो। हम कोई भौतिक वैभव नहीं चाहते, आपकेवल हमारे राग-द्वेषों को हटा दीजिए। हे प्रभु हमसे कितनी ही भूलें हुई हों, हमने कितने ही पाप किये हों, किन्तु आप तो करुणा के समुद्र हो। हमको केवल एक बार इस संसार से निकाल लो, बस इतना ही निवेदन है।[३८]

तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' में 'लघुता' प्रमुख है। जैन कवि कुमुदचन्द, जगजीवन, मनराम, बनारसीदास, रूपचन्द और भूधरदास के पदों में भी लघुता को ही मुख्यता दी गयी है।

३७- जैन पद संग्रह, भाग ३, पृ० ६०

३८- हिन्दी पद संग्रह, पद १३८

लघुता के साथ ही दीनता का भाव भी जन्म लेता है। भक्त में न तो गुण हैं और न पुण्य करने की सामर्थ्य। उसकी जिन्दगी पापों में कटती है, इसी कारण उसे बारम्बार गर्भ के दु:खों को झेलना पड़ता है। वह जीवन भर बेचैन रहता है। अहिंसा को परम धर्म मानने के कारण जिनेन्द्र तो स्वभाव से ही परम कारुणिक होते हैं। उन्होंने सदैव दीनों पर दया की है। हिन्दी के जैन कवियों ने उनके `दीनदयालु` रूप को ले कर बहुत कुछ लिखा है। उनमें पं० दौलतराम की `अध्यात्म बारहखड़ी`, भैया भगवतीदास का `ब्रह्मविलास,` भूधरदास का `भूधर-विलास`, द्यानतराय का `द्यानत विलास` तथा मनराम का `मनराम विलास` प्रसिद्ध हैं। इनमें भगवान् के उस विरुद का निरूपण है जिसके सहारे दीन तरते हैं, भले ही उन्होंने हीन कर्म किया हो।

जिनेन्द्र `दीनदयालु` के साथ ही `अशरणशरण` भी हैं। अशरणों को शरण देना भी दया से सम्बन्धित है। भगवान् सदैव अशरणों को शरण देता रहा है इसलिए भी वह महान् है। जैन कवियों ने जिनेन्द्र के इस रूप को ले कर अनेक अनुभूति परक पदों का निर्माण किया है।

द्यानतराय कहते हैं कि हे मन! तू बारम्बार उस दीनदयाल भगवान् का भजन कर जिसके नाम के प्रताप से एक क्षण में ही करोड़ों पाप-जाल नष्ट हो जाते हैं। उस परमब्रह्म परमेश्वर के दर्शन से मन आनन्दित हो जाता है। उस भगवान् के नाम का स्मरण करने से परम सुख की प्राप्ति होती है तथा उस भगवान् की भक्ति से काल भी भाग जाता है। जिसका रसाल नाम इन्द्र, फणीन्द्र तथा चक्रधारी राजा भी जपते हैं, उस दीनदयाल भगवान् के नाम के समान ऊर्ध्व, मध्य और पाताल लोक में अन्य कुछ भी नहीं है। द्यानतराय कहते हैं भयानक विषय वासनाओं को छोड़ कर उसी भगवान् के नाम को नित्य जपो --

रे मन भज भज दीनदयाल।
जाके नाम लेत इक छिनमें कटै कोट अघजाल।
परमब्रह्म परमेश्वर स्वामी देखें होत निहाल।
सुमरन करत परम सुख पावत सेवत भाजै काल।

इन्द्र फनिन्द कुधर गावैं जाको नाम रसाल ।
जाको नाम ज्ञान परकासै नाशै मिथ्याजाल ।
जाके नाम समान नहीं कछु ऊरध मध्य पताल ।
सोई नाम जपों नित द्यानत छांडि विषय विकराल ।[३६]

द्यानतराय कहते हैं कि हे प्रभु तुम दीनबन्धु तथा दीनों पर दया करने वाले दीनदयाल कहलाते हो । तुम स्वयं तो मुक्त हो गये किन्तु हम तो संसार के जाल में ही फसे हुए हैं । हम तीनों काल, मन और वचन से भली प्रकार तुम्हारा नाम जपते हैं । इतने पर भी तुम हमको कुछ भी नहीं देते फिर हमारी दशा क्या होगी । हम जैसे भी हैं, भले हैं या बुरे हैं तुम्हारे ही भक्त , तुम हमें भली प्रकार जानते हो । हम और कुछ भी नहीं चाहते । हम तो केवल यही चाहते हैं कि हमारे हृदय से राग-द्वेष दूर हो जायें । तुम तो अत्यन्त कृपालु हो । हमारी भूल को क्षमा कर दो । हे प्रभु कृपा करके एक बार हमें इस संसार सागर से पार लगा दो ।

तुम प्रभु कहियत दीनदयाल ।
आपन जाय मुकत में बैठे हम जु रुलत जगजाल ।
तुमरो नाम जपैं हम नीके मन वच तीनों काल ।
तुम तो हमको कछु देत नहिं हमरो कौन हवाल ।
बुरे भले हम भगत तिहारे जानत हो हम चाल ।
और कछू नहिं यह चाहत हैं राग दोष कौं टाल ।
हमसों चूक परी सो बकशो तुम तो कृपाविशाल ।[४०]
द्यानत एक बार प्रभु जगतैं हमको लेहु निकाल ।

भूधरदास प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की स्तुति करते हुए उनसे समस्त अपने अपराध क्षमा करके आशा पूरी करने की प्रार्थना करते हैं कि हे आदिपुरुष ! मेरी

३६- द्यानत पद संग्रह, पद ६६

४०- वही, पद ४० ६७

तुम आशा को पूर्ण करो । मेरे अवगुणों को क्षमा करो । आप दीनों पर दयालु हैं, अपने इस स्तुति पद का या तो परित्याग करो या मेरी विनती सुनो । मैं अनादि काल से इस संसार में पड़ा हूं किन्तु तुम जैसे विश्वपति को इससे पूर्व नहीं जान पाया । हे अन्तर्यामी प्रभु मैंने तुम्हारी भक्ति नहीं की इस अपराध को क्षमा कर दो । तुम्हारी भक्ति के प्रसाद से मुझे परमपद की प्राप्ति होगी । तथा यह बन्धन की दशा समाप्त हो जायेगी । हे प्रभो ! उस समय (मुक्त परमात्मा हो जाने पर) मैं तुम्हारी पूजा नहीं करूंगा, यह मेरा दूसरा अपराध भी क्षमा करो । 'भूधर' की यही प्रार्थना है कि अब तक के अपराध क्षमा हों तथा आगे के अपराधों को भी तुम क्षमा कर दो । हे भगवान् सेवक की धृष्ठता तो देखो जो अपने परमगुरु परमात्मा से भी वणिक्वृत्ति कर रहा है --

आदि पुरुष मेरी आस भरो जी । औगुन मेरे माफ करो जी ।
दीनदयाल विरद विसरो जी, कैं विनती मोरी श्रवण धरो जी ।
काल अनादि वस्यो जगमाहीं, तुमसे जगपति जानें नाहीं ।
पांय न पूजे अन्तरजामी, यह अपराध क्षमा कर स्वामी ।
भक्ति प्रसाद परम पद ह्वै है, बंधी बंध दशा मिट जै है ।
तब न करौं तेरी फिर पूजा, यह अपराध क्षमों प्रभु दूजा ।
भूधर दोष किया बकसावै, अरु आगे को लारे लावै ।
देखो सेवक की ढिठवाई, गरुवे साहिब सों बनियाई । ४१

दौलतराम अपनी दीनता प्रकट करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु तुम दाता हो और मैं भिखारी हूं । हाथ-जोड़ कर आपसे अपने अवगुण माफ करके उद्धार करने की भीख मांगता हूं । वे कहते हैं कि हे नाथ ! मुझे पार क्यों नहीं लगाते । मेरी क्या गलती है । मेरा क्या अपराध है ? अंजन चोर महापापी और सप्तव्यसन का सेवन करने वाला था, किन्तु वह मृत्यु के पश्चात् देवलोक गया, उसके विषय में तुमने कुछ विचार नहीं किया । सुअर, सिंह तथा वानर आदि किस व्रत के पालने वाले थे कि वे भी मर

४१- जैन पद संग्रह, भाग ३, पद ४६

कर बड़े बड़े देव हुए। उनके आचरण पर भी आपने कुछ ध्यान नहीं दिया। अष्टकर्म मेरे पूर्व जन्म के शत्रु हैं। इन्होंने मेरे साथ धोखा किया है। मेरे "दर्शन ज्ञान चारित्र" रूपी रत्न को इन्होंने मुझसे छीन लिया है और मुझे बहुत दुःख दिये हैं। हे प्रभु तुमने सभी के अवगुणों को क्षमा किया है और सबका हित किया है। मैं भी आपका सेवक हूं। मैं हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर रहा हूं कि मुझे भी पार लगा दो, क्योंकि मैं भिखारी हूं और आप दाता हैं।

नाथ मोहि तारत क्यों ना ? क्या तकसीर हमारी ?
अंजन चोर महा अघकरता सप्तविसनका धारी।
वो ही मर सुरलोक गयो है वाकी कछु न विचारी।
सूकर सिंह नकुल वानर से कौन-कौन व्रतधारी।
तिनकी करनी कछु न विचारी वे भी भये सुर भारी।
अष्टकर्म वैरी पूरब के इन मो करी खुवारी।
दर्शनज्ञानरतन हर लीने दीने महादुख भारी।
अवगुण माफ करे प्रभु सबके सबकी सुध न विसारी।
'दौलत' दास खड़ा कर जोरे तुम दाता मैं भिखारी।[४२]

दौलतराम अपने को भिखारी तो कहते हैं पर वे ऐसी-वैसी भीख नहीं मांगते। उनको और कुछ नहीं चाहिए, जिस भावना में प्रभु रत हैं, वही भावना चाहिए। वे कहते हैं कि हे जिनराज! तुम तीन लोक के जीवों को पार लगाने वाले हो, मुझे इस संसार समुद्र से पार क्यों नहीं लगाते। तुमने अंजन चोर को निरंजन कर दिया इसी से तुम्हें पापियों का उद्धार करने वाला कहा जाता है। सिंह, वराह, बन्दर सबको जल्दी से पार लगा दिया मेरी बार इतनी देर क्यों कर रहे हो ? तुमने अनेक पापियों का उद्धार किया है। मुझ पापी का उद्धार क्यों नहीं करते। हे प्रभु तुम लोगों को मोक्ष मार्ग बता कर उनका उद्धार करते हो। इसमें तुम्हें कुछ करना भी नहीं पड़ता। तुम्हारी छवि के दर्शन मात्र से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं तथा तुम्हारे गुणों के

४२- दौलत विलास, पद ३२

चिन्तन से कर्म-धूल झड़ जाती है। मैं और कुछ भी नहीं चाहता, मुझे तो कृपा करके वही भावना दीजिए जैसी भावना में आप निमग्न रहते हैं।

हो तुम त्रिभुवनतारी हो जिन जी, मो भवजलधि क्यों न तारत हो।
अंजन कियो निरंजन तातैं, अधम उधार विरद धारत हो।
हरि, वराह, मर्कट झट तारे मेरी बेर ढील पारत हो।
यों बहु अधम उधारे तुम तो मैं कहा अधम न मुहि तारत हो।
तुमको करनो परत न कछु शिव-पथ लगाय भव्यनि [illegible] रत हो।
तुम छवि निरखत सहज टरैं अघ, गुण चिंतत [illegible] ज झारत हो।
दौल न और चहै मो दीजै, जैसी आप भावनारत [illegible]ो।[४३]

कर्मबन्ध से छुटकारा पाने के लिए जिनराज से महान् और दूसरा कोई शरण नहीं है। इसीलिए दौलतराम कहते हैं कि हे जिनराज। मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। हे जगतगुरु तुम बहुत दयालु हो तथा मैं भव-वन में अनेक कष्ट सहन कर रहा हूं। मोह रूपी महान् दुष्ट ने घेर कर मुझे संसार वन में बहुत अधिक भटकाया है। मैंने नित्य ही सम्यक्ज्ञान, आचरण रूपी अपने खजाने को भुला दिया है तथा तन और धन (पर पदार्थ) को अपना लिया है। मैंने आत्मानन्द और आत्मानुभव जैसे अमृत को त्याग कर विषय रूपी जहर को खाया है। मूल रूप से मेरी भूल ही दुखदायी है, मोह तथा कर्म तो निमित्त हैं। तुम्हारे ही दर्शन से मेरे मोह, कर्म रूपी दुष्ट भाव मन्द होते हैं और कोई दूसरा उपाय नहीं है जिससे ये भाव क्षीण हो जायें। तुम शिव-स्वरूप हो तथा मुक्ति मार्ग के द्रष्टा हो, तुम्हारे सुयश को मुनिजनों ने गाया है। जग के कल्याण में तुम सहज निमित्त कारण हो ऐसा मेरे हृदय में निश्चय हो गया है। हे प्रभु तुम्हारे चरणों में मैं अपना सिर झुकाता हूं, वन्दना करता हूं। मुझ पर यह कृपा कीजिए कि मैं कर्म बन्धन से मुक्त हो जाऊं।

हे जिन तेरे मैं शरणै आया।
[illegible] जो परमदयाल जगतगुरु मैं भवभव दुख, पाया।

मोह महाठग घेर रह्यौ मोहि भवकानन भटकाया ।
नित निज ज्ञान चरन निधि बिसर्यो तन धन कर अपनाया ।
निजानन्द अनुभव पियूषतज विषय हलाहल खाया ।
मेरी भूल मूल दुखदाई निमित मोहविधि थाया ।
सो ठग होत शिथिल तुमरे ढिग और न हेतु लखाया ।
शिवस्वरूप शिवमगदर्शक तुम, सुयश मुनीगण गाया ।
तुम हो सहज निमित जगहित के मो उर निश्चय पाया ।
भिन्न होहुं विधितैं सो कीजे 'दौल' तुम्हें सिरनाया ।[४४]

बुधजन भी अपने परमदयालु प्रभु से पांव पड़कर शरणागति का यही फल मांगते हैं कि गति-गति में न फिरना पड़े । वे कहते हैं कि हे परमदयालु प्रभु ! मैं तुम से विनती कर रहा हूं, मेरी विनती सुन लो । इस संसार सागर से पार होने का अन्य कोई उपाय नहीं है, इसलिए हे जग को पार लगाने वाले जिनराज मैं तुम्हारे पांव पड़ता हूं । अनादि काल से कर्म मेरे साथ लगे हुए हैं इनके कारण मुझे बहुत दुःख उठाने पड़ते है, मैं कब तक उनको सहन करूं । मुझ पर दया करके मेरे कर्मों को नष्ट कर दो । क्योंकि इन्हीं के कारण जन्म-मरण के दुःखों को सहन करना पड़ता है जिससे मैं बहुत भयभीत हूं। तुम्हारी अनुपम-चरण-शरण में आकर मैं तुमसे यही मांगता हूं कि अब मुझे भवभ्रमण से मुक्ति दिला दो ।

म्हारी सुणिज्यो परम दयालु तुमसौं अरज करूं ।
आन उपाव नाहिं या जामें जग तारक जिनराज तेरे पांय परूं ।
साथ अनादि लागि विधि मेरी करत रहत बेहाल इनकौं कौलौं भरूं ।
करि करुना करमनको काटो जनम मरन दुखदाय इनतैं बहुत डरूं ।
चरन सरन तुम पाय अनुपम बुधजन मांगत येह गति गति नाहिं फिरूं ।[४५]

४४- दौलत विलास, पद २२
४५- बुधजन विलास, पद ४८

आराध्य की सेवा करने का भाव दास्य भाव है । यह दासता सात्विक होती है, स्वार्थ जन्य नहीं । हिन्दी के अनेक जैन कवियोंने भव-भव में जिनेन्द्र की सेवा करनी चाही है । उन्होंने सांसारिक सुख नहीं मांगे । मांगी तो सेवा । सेवाजन्य आनन्द ही उनकी आकांक्षा है । यह स्वार्थरहित और पवित्र थी ।

भक्ति में सेवा या दास्य भाव के साथ ही आराध्य में दयालुता या कारुण्य भाव आवश्यक है । जैन भक्त का आराध्य इतना दयालु और उदार है कि वह अपने दास कोअपनेसमान बना लेता है । समंतभद्र ने लिखा है कि हे भगवन् । जो आपकी शुश्रूषा करते हैं वे शीघ्र ही आप जैसी लक्ष्मी से सुशोभित होते हैं।[४६] बनारसी दास ने भी ज्ञानी के लिए सेव्यभाव की भक्ति अनिवार्य बतलायी है । जो भगवान् दीनों पर इतनी दया करे कि उन्हें अपने समान बना ले, वह वास्तव में `दीनदयालु` है । इसी कारण जैन भक्त बार-बार उसे `दीनदयालु` कह कर पुकारता है ।

हिन्दी के अनेक जैन कवियों ने दास्यभाव की भक्ति की है । कुछ लोगों के अनुसार जैन भक्ति में दास्यभाव नहीं है । उनके कथनानुसार आत्मा में परमात्मा बनने की ताकत मौजूद है, फिर उसे दासता करने की क्या आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त वे भगवान् में कर्तृत्व भी नहीं मानते इसलिए भी दासता का खण्डन करते हैं । किन्तु आत्मा अभी परमात्मा नहीं बनी है । उसमें उन तत्वों का आविर्भाव नहीं हुआ है जो परमात्मा में मौजूद हैं अत: यदि वह परमात्मा में सेवाभाव रखे तो अनुपयुक्त नहीं है । जहां तक कर्तृत्व का सम्बन्ध है, वह भले ही प्रेरणात्मक हो, तो फिर दास्य भाव भी निभ सकता है । जैन कवियों ने दास्य भक्ति के अनेक पदों की रचना की है--

द्यानतराय कहते हैं-- श्रीजिनराज । मैं तुम्हारा सेवक हूं । मुझे पार लगा दो । मैं तुम्हारा ही दास हूं तथा तुम्हारा ही भक्त हूं इसलिए मुझे अब पार लगा दो । चारों गतियोंके दु:ख की अग्नि से अब अपने भक्त को बचा लो । अनादि

४६- स्तुतिविद्या, श्लोक ७०

काल से मैं चतुर्गति भ्रमणजन्य महान् कष्ट सहन कर रहा हूं इससे मुझे छुटकारा दिला दो। विषय तथा कषाय रूपी, दोनों ठगनियों ने मेरे सभी गुण छीन लिये हैं इन्होंने सभी प्रकार से मुझे ठग लिया है अब इनसे मुझे बचा लो। द्यानतराय कहते हैं कि यदि तुम्हारी कृपा से मेरा ममत्व भाव नष्ट नहीं हुआ है तो इसे नष्ट करने का और कोई भी उपाय नहीं है।

दास तिहारो हूं मोहि तारो श्रीजिनराय।
दास तिहारो भक्त तिहारो तारो श्रीजिनराय
चहुंगति दुखी आगतैं अब लीजे भक्त बचाय।
विषय कषाय ठगनि ठग्यो दोनों तैं लेहु छुड़ाय।
द्यानत ममता नाहरीतैं तुम बिन कौन उपाय।[47]

हे जिनवर! तुम मेरे स्वामी हो, प्रभु हो और मैं तुम्हारा सेवक हूं। तुम्हारे नाम स्मरण के बिना मैं अब तक अनेक योनियों में भटकता रहा हूं। भाग्योदय से मुझे तुम्हारे दर्शन मिले हैं और पाप नष्ट हो गये हैं। तुम देवों के भी देव परमेश्वर हो मुझे शीघ्र ही दान दो। यदि तुम मुझे मोक्ष नहीं देते हो तो मैं किसके पास कहां जाऊं? मेरे तो माता, पिता, बड़े भाई सब कुछ तुम्ही हो और तुमसे मुझे अत्यधिक प्रेम है। हे प्रभु कृपा करके मेरा उद्धार कर दो। मुझे इस भव-समुद्र से पार लगा दो जिससे दोबारा मुझे इस संसार में न आना पड़े।

तू जिनवर स्वामी मेरा मैं सेवक प्रभु हो तेरा।
तुम सुमरन बिन मैं बहुत कीना नाना जोनि बसेरा।
भाग उदय तुम दरसन पायो पाप भज्यों तजि खेरा।
तुम देवाधिदेव परमेश्वर दीजै दान सबेरा।
जो तुम मोख देत नहिं हमको कहां जायं किहि डेरा।
मात तात तू ही बड़ा भ्राता तोसों प्रेम घनेरा।
द्यानत तार निकार जगतैं फेर न ह्वै भवफेरा।[48]

---

४७ द्यानत पद संग्रह, पद १४६

४८- वही, पद ५

महाकवि बुधजन अत्यन्त विनीत भाव से भगवान् से अपनी मुक्ति प्राप्त करने की भावना व्यक्त कर रहे हैं। क्योंकि भगवान् दीनदयाल, दीनों के नाथ हैं --

अरज करूं (तसलीम करूं) ठाढो विनऊं चरनन को चेरो।
दीनानाथ दयाल गुसाईं मोपर करुना करिके हेरो।[49]

तुम्हारे चरणों का सेवक मैं खड़ा हुआ तुमसे विनती करता हूं, प्रार्थना करता हूं। हे दीनों के नाथ दीनों पर दया करने वाले स्वामी मुझ पर करुणा करके मेरी ओर देखो। इस संसार रूपी वन में मुझको कमजोर देख कर दुष्ट कर्मों ने मुझे चारों तरफ से घेर लिया है। इन कर्मों ने मेरे नाना प्रकार के रूप बना कर चारों गतियों में मुझको भटकाया है। अनादि कालसे भटकने के कारण दुःखी अब मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। अब तुम मुझ पर कृपा करो और शीघ्र ही मुझको इस भव-भ्रमण से मुक्ति दिला दो।

बुधजन कहते हैं कि हे प्रभु! मैं तेरा दास हूं, मेरी अरज सुन लो। अष्ट कर्म मुझको घेर रहे हैं और बहुत दुःख दे रहे हैं। हे दीनदयाल। मुझे दीन जानकर गति-गति में फिरना मिटा दो और जंजाल टाल कर अपने चरणों का दास बना लो। कृपा करके मेरी ओर निहारो, मैं बार-बार विनती करता हूं।

मैं तेरा चेरा अरज सुनो प्रभु मेरा।
अष्टकर्म मोहि घेरि रहे हैं दुख दे हैं बहुतेरा।
दीनदयाल दीन मो लखिकै मेटो गति गति फेरा।
और जंजाल टाल सब मेरा राखो चरनन चेरा।
बुधजन ओर निहारो कृपा करि बिनवै बारंबारा।[50]

मेरुनन्दन उपाध्याय ने लिखा है, "अजितनाथ और शान्तिनाथ मंगलदायक श्रीसम्पन्न और पूनों के चन्द्र की भांति सुख प्रदान करने वाले हैं। दोनों ही संसार के गुरु हैं और नेत्रों को आनन्दित करते हैं। उन जिनवरों को प्रणाम करके और उनके

४९- बुधजन विलास, पद ५०
५०- वही, पद ५४

गुणों को गा कर जो उनकी सेवा करता है, उसके पुण्य के भण्डार भर जाते हैं और उसका मानव-भव सफल हो जाता है ।[५१]

ब्रह्म जिनदास ने भगवान् ऋषभदेव से न मोक्ष मांगा और न इहलौकिक वैभव । उन्होंने कहा, 'हे प्रभु ! हमें जन्म-जन्म में आपके चरणों की सेवा का अवसर मिले[५२] --

तेह गुण मैं जाणी या ए, सद्गुरु तणो पसावतो ।
भवि भवि स्वामी सेवसुं ए, लागु सह गुरु पाय तो ।

अठारहवीं शताब्दी के कवि भूधरदास ने 'भूधरविलास' के एक पद में लिखा है कि हे भगवान् मैं याचक हूं और आप दानी हो । मुझे और कुछ नहीं चाहिए, केवल सेवा का वरदान देने की कृपा करें[५३] --

मैं तो थांकी आज महिमा जानी ।

'जैन शतक' की एक 'भगवत्-प्राथना' में भी उन्होंने यह ही कहा है, "हे सर्वज्ञ देव ! सदैव तेरी सेवा का अवसर प्राप्त होता रहे, ऐसा मेरा निवेदन है ।[५४]

आगम अभ्यास होहु सेवा सर्वज्ञ तेरी
संगति सदैव मिलै साधरमी जन की ।

भैया भगवतीदास ने भगवान् पार्श्व जिनेन्द्र की सेवा की बात करते हुए लिखा है, कि हे जीव । तू देश-देशान्तरों में क्यों दौड़ता फिरता है, इन्द्र और नरेन्द्रों को क्यों रिझाता है ? देवी-देवताओं को क्यों मनाता है, और क्यों चन्द्र को सिर झुकाता है । सूर्य को अंजलिबद्ध हो कर नमस्कार क्यों करता है और क्यों पाखण्डी तपस्वियों के पैर छूता फिरता है । न जाने तू पार्श्व जिनेन्द्र की सेवा क्यों

५१- मेरुनन्दन उपाध्याय, अजितशान्तिस्तवनम् ।

५२- ब्रह्मजिनदास, आदिपुराण

५३- भूधरविलास, पद ४३

५४- जैन शतक, पद ६१

नहीं करता जिससे तेरा दिन और रात का सोच ही समाप्त हो जाये।

काहे को देश दिशान्तर धावत, काहे रिझावत इंद नरिंद।
काहे को देवि औ देव मनावत, काहे को शीस नवावत चंद।
काहे को सूरज सों कर जोरत, काहे निहोरत मूढ़ मुनिंद।
काहे को शोच करै दिन रैन तूं, सेवत क्यों नहिं पार्श्व जिनन्द[५५]।

'भैया' का पूर्ण विश्वास है कि भगवान् के चरणों की सेवा करने से तुरन्त ही अनन्त गुण प्रकट हो जाते हैं, और इतनी 'रिद्धि-सिद्धियां' मिलती हैं, कि उनसे चिरकाल तक परमानन्द का अनुभव किया जा सकता है। उन्होंने 'अहिछिति पार्श्व जिन स्तुति' में लिखा है, "अश्वसेन के नन्द आनन्द के कन्द हैं अथवा पुनम के चन्द अथवा दिनन्द हैं। वे कर्मों के फन्दे को हरते, भ्रम का निकन्दन करते, दुःख-द्वन्द्व को दूरते और महाचैन के सुख को पूरते हैं। सुरेन्द्र उनकी सेवा करते हैं, नरेन्द्र गुणगाते हैं और मुनीन्द्र ध्यान लगाते हैं, और इस भांति सभी को अत्यधिक सुख मिलता है। वे भगवान् जिनचन्द्र क्षण-भर में ही आनन्द की सुगन्धि बिखेर देते हैं।[५६]

आनंद को कन्द किधौं पूनम को चन्द किधौं।
देखिए दिनंद ऐसो नन्द अश्वसेन को
करम को हरे फंद भ्रम को करै निकंद
चूरै दुख द्वन्द सुख पूरै महाचैन को
सेवत सुरिंद गुन गावत नरिन्द भैया
ध्यावत मुनिन्द तेऊ पावैं सुख ऐन को।
ऐसो जिनचन्द करै, छिन में सुछंद सुतौ।
ऐपित को इंद पार्श्व पूजौं प्रभु जैन को।

अठारहवीं शताब्दी के कवि बिहारीदास ने अपनी पिछली करनी पर

५५- ब्रह्मविलास, पृ० ६१

५६- वही, पृ० १६२

पश्चातापक रते हुए भगवान् से प्रार्थनाकी है, 'मैं सदैव तृष्णा की दाह में जलता रहा हूं और समता-सुधा को चखा तक नहीं। अपूर्व भावत् भक्ति स्वाद के बिना मैं विषय रस का ही भक्षण करता रहा। हे प्रभु! अब सदा मेरे हृदय में बसो, और मैं सदैव आपके चरणों का सेवक रहूं।[५७]

जगतराम ने भी 'जैन-पदावली' में 'साहिब सेवगताई' के पुष्ट होने की याचना की है।[५८] शिरोमणि जैन ने अपने 'धर्मसार' में भगवान् महावीर के उन चरणों में श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया है, जिनकी इन्द्र और नरेन्द्र निरन्तरसेवा किया करते हैं और जिनका स्मरण करने मात्र से ही पाप विलीन हो जाते हैं।[५९]

कवि जिनहर्ष ने अपनी 'चौबीसी' के प्रथम छन्द में ही लिखा है, 'भगवान् ऋषभ जिनेन्द्र के दर्शन मात्र से पाप दूर हो जाते हैं और आनन्द बढ़ता उन भगवान् की सुर, नर और इन्द्र सदैव सेवा किया करते हैं।[६०]

तुम साहिब मैं चेरा, मेरा प्रभु जी हो।

जगतराम कहते हैं कि हे प्रभु! मैं तुम्हारा दास हूं और तुम मेरे स्वामी हो। तुझ सेवक से सेवा में भूल होना सम्भव है लेकिन मेरे स्वामी श्री जिनराज हैं। मुझ से अपने स्वामी की सेवा भलीप्रकार नहीं हो पाती क्योंकि मैं कर्म बन्धन से बंधा हुआ हूं। मेरा दोष केवल यही है कि मैं रात-दिन प्रभु का स्मरण करता हूं। हे प्रभु अब मुझ पर दया करके मेरे कर्मों के उलझाड़े को मिटा दो। अर्थात् मुझे कर्म-बन्धन से मुक्त कर दो। मैं हाथ जोड़ कर आपसे यही प्रार्थना करता हूं कि मुझे अपने चरणों में स्थान दो

५७- बृहज्जिनवाणी-संग्रह, पृ० १२७-२८

५८- हिन्दी पद संग्रह, पद १२३

५९- शिरोमणिदास, धर्मसार

६०- देखो ऋषभ जिनन्द तव तेरो पातिक दुरि गयो।
प्रथम जिनंद चन्द कलि सुर-तरु कंद।
सेवैं सुर नर इंद आनन्द भयो॥

तुम साहिब मैं चेरा, मेरा प्रभु जी हो ।
कुल चाकरी मो चेरा की, साहिब ही जिन मेरा ।
टहल यथाविधि बन नहीं आवे, करम रहे कर बेरा ।
मेरो अवगुण इतनो ही लीजे निश दिन सुमरन तेरा ।
करो अनुग्रह अब मुझ ऊपर मेटो अब उरझेरा ।
जगतराम कर जोड़ वीनवै, राखो चरणन नेरा ।[६१]

हे प्रभु तुम मेरे स्वामी हो और मैं तुम्हारा दास हूं, सेवक हूं । मैं संसार रूपी कुएं में डूब रहा हूं, मुझे शीघ्र ही बाहर निकाल लो । माया, मिथ्या और लोभ तीनों ने मिल कर मुझे घेर लिया है । मोह का फंदा मेरे गले में डालकर मुझे बहुत तरह से सताया है । अपने गोत्र वाले, अपने सम्बन्धी तथा मित्र आदि सभी स्वार्थ के साथी हैं, सभी सुख प्राप्त करना चाहते हैं । जब यमराज (काल) का आक्रमण शरीर पर होता है अर्थात् जब मृत्यु आती है तब कोई भी पास में नहीं आता । मैंने जगत में अनेक देवी-देवताओं की सेवा की किन्तु मेरा कर्मों का फन्दा नहीं कटा । तुम सब जीवों का उपकार करने वाले हो, ऐसा मैंने तुम्हारे बारे में सुना है । तुम्हारा ऐसा सुयश सुनकर मैं तुम्हारे चरणों की शरण में आया हूं । हे प्रभु मुझ पर इतनी कृपा करो कि मैं फिर संसार में भ्रमण न करूं । मुझे आवागमन से मुक्त कर दो ।

तुम साहिब मैं चेरा, मेरे प्रभु जी हो ।
डूबत हूं संसार कूप में, काढ़ो मोहि सवेरा ।
माया मिथ्या लोभ सौच पर, तीन्हूं मिलि मुझि घेरा ।
मोह फांसिका बंध डारिकै,दीया बहुत भटभेड़ा ।
गोती नाती जग के साथी चाहत है सुख केरा ।
जम की तपति पड़ै जब तन पर कोई न आवै नेरा ।
मैं सेया बहुत देव जगत के, फंद कट्या नहि मेरा ।
पर उपकारी सब जीवन का, नाम सुन्या मैं तेरा ।

६१- हिन्दी पद संग्रह, पद १२१

जैसा सुजश सुराया मैं तब ही, तुम चरणन कूं हेरा ।
साहिब ऐसी कृपा कीजिये, फिर फेर न ल्यो भव फेरा ।[६२]

६२- हिन्दी पद संग्रह, पद ३५६

दाम्पत्य भाव

मानव की वृत्तियों में रागात्मिका वृत्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। मनोवैज्ञानिकों ने मानव की अनेक प्रवृत्तियों को इसी वृत्ति से अभिप्रेरित माना है।

यह वृत्ति जब ऊर्ध्वमुखी होती है तो उसका क्षेत्र विस्तृत होता जाता है। जब सीमित क्षेत्र होता है तो उसकी अभिव्यक्ति का प्रकार भिन्न होता है।

भक्ति के सन्दर्भ में रागात्मिका वृत्ति का विकास इतना व्यापक होता है कि प्रेम सर्वव्यापक हो जाता है। यही कारण है कि भक्ति को 'परानुरक्ति' कहा गया है। यहां 'परा' शब्द से अभिप्राय 'उत्कृष्टता' और सान्द्रता दोनों से है। गाढ़ी भक्ति ही वास्तविक भक्ति है।

यह अनुरक्ति जब पुरुष की नारीविशेष के प्रति या नारी की पुरुष विशेष के प्रति होती है, तब वह दैहिकता में सिमट जाती है। वहां अपने प्रेमी या प्रेमिका से अन्य किसी द्वारा प्रेम वांछनीय नहीं रहता किन्तु जब यह अनुराग परमात्म तत्व के प्रति हो जाता है तब वह दैहिकता से ऊपर उठ जाता है। भक्ति में अनुरक्ति का यही रूप गृहीत है।

भारतीय भक्ति परम्परा में भक्तों ने प्राय: स्वयं को प्रेमिका और आराध्य को प्रेमी रूप में अभिव्यक्त किया है। नारी की कोमल वृत्तियों में जो आकर्षण होता है उससे पुरुष उसकी ओर खिंचा चला आता है। भक्त अपनी ओर अपने आराध्य को आकृष्ट करना चाहता है। यही उसके प्रेमिका बनने का रहस्य है। सूफी और निर्गुनिया सन्तों की कविता में 'प्रेम' का यही रूप मुखर हुआ है।

जैन कवियों के दार्शनिक चिन्तन ने उन्हें प्रेम की अभिव्यक्ति का दोहरा अवसर प्रदान किया। उनका चेतन भी अनुरक्त होता है और सुमति भी। चेतन मुक्ति

वधू में अनुरक्त होता है और उसे पाने के लिए कठिन से कठिन प्रयत्न करता है।

मुक्ति वधू को प्राप्त करने के लिए उसे मोह राज को पराजित करना पड़ता है। मोह प्रबल शत्रु है। उसे पराजित करने के लिए चेतन को बड़ी तैयारी करनी पड़ती है। शम, दम, त्याग, संयम आदि की सैन्य संगठित करनी पड़ती है। धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान की व्यूह रचना करनी पड़ती है तब कहीं मोह का सपरिकर विनाश संभव हो होता है।

चेतन आत्मा और मुक्तिवधू का यह रूपक जैन परम्परा के प्राकृत, संस्कृत अपभ्रंश और हिन्दी में समान रूप से अभिव्यक्त हुआ है। अपभ्रंश में मयणपराजय, संस्कृत में मदनपराजय, मोहराजपराजय आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। हिन्दी कवियों ने पदों में इस रूपक को मार्मिक एवं सरस ढंग से अभिव्यक्त किया है।

नारी के पुरुष के प्रति आकर्षण को जैन कवियों ने 'सुमति का चेतन के प्रति प्रेम' के रूप में व्यक्त किया है।

चेतन और सुमति का रूपक संयोग और विरह दोनों प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है।

जब तक चेतन कुमति की कुसंगति में पड़ा उसमें आसक्त रहता है, सुमति विरह में झूरती रहती है। वह ऐसी तलफती रहती है जैसे जल के बिना मछली तलफती है। होली और फाग जैसे रंग भरे त्योहार भी उसके लिए फीके ही रहते हैं वह लाख जतन करके चेतन को 'निज घर' लाने का प्रयत्न करती है। 'जिनराज' और गुरु की मिन्नतें करती है कि वे चेतन को समझायें जिससे वह दर-दर भटकना छोड़ कर निजघर आये।

चेतन के निज घर आने पर सुमति के आनन्द का क्या कहना। 'घर आये चिदानंद कंत' और सुमति गोरी आनन्द में डूब जाते हैं। सुमति अपने आपको चिदानन्द में ऐसे समा जाना चाहती है जैसे बूंद दरिया में समा जाती है। जैसे ओला गल कर पानी हो जाता है।

चेतनराम भी उर्मा से परे हैं। सम्यक्त्व की केसर घोल कर ज्ञान की पिचकारी से होली खेली जा रही है।

हिन्दी के जैन कवियों ने `चेतन और सुमति` के ये रूपक अनेक पदों में पूरी रसमयता के साथ निबद्ध किये हैं।

जैन कवियों को दाम्पत्य भाव की अभिव्यक्ति का एक अत्यन्त सशक्त आधार `नेमि-राजुल` की कथा में मिला।

नेमि जैन परम्परा में बाइसवें तीर्थंकर माने गये हैं। वे यदुवंशी राजा समुद्र विजय के पुत्र थे। कृष्ण उनके चचेरे भाई थे।

नेमिकुमार विवाह के लिए राजी नहीं थे। किसी तरह उनकी भाभियों ने उन्हें मना लिया। जूनागढ़ की राजकुमारी राजुल के साथ उनका विवाह निश्चित हुआ।

यदुवंशी राजाओं के साथ सजधज कर बारात जूनागढ़ पहुंची। राजुल के पिता उग्रसेन ने भी विवाह की तैयारी में कोई कसर बाकी न रखी। बारात में आये सामिष भोजियों के लिए अनेक पशुओं को इकट्ठा किया गया था।

वरयात्रा राजुल के घर की ओर बढ़ रही थी। नेमिकुमार रथ में बैठे थे। सहसा उन्हें पशुओं का क्रन्दन सुनाई दिया। उन्होंने रथ रोका। सारथि से पूछा। सारथि ने सहज भाव से बता दिया --`आपकी बारात के भोज के लिए ये पशु लाये गये हैं।`

नेमिकुमार का हृदय करुणा से द्रवित हो गया। उनका मन निर्वेद से भर गया। `इतनी नृशंसता। इतनी हिंसा। नहीं नहीं, यह सब नहीं होगा। सारथि! रथ रोको। यह विवाह नहीं होगा।` नेमिकुमार ने कहा। उन्होंने विवाह का वेष उतार फेंका और सब कुछ त्याग कर सीधे `गिरिनार` की ओर बढ़ गये। बारात बिखर गयी। राजुल `अध-ब्याही` रह गयी। नेमिकुमार संन्यस्त हो कर तपस्या करने लगे।

राजुल तत्काल तो कुछ समझ ही न पायी कि क्या हो गया है, वह तो हर्ष विभोर कहीं और ही खोई हुई थी, पर जब उसने यह सब जाना तो उस पर दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा । वह सुध-बुध भूल गयी । विरह में व्याकुल राजुल को कुछ समझ में नहीं आता कि वह क्या करे । अन्त में वह भी अपने पिया की जोगिन बनने का निश्चय कर लेती है ।

इस प्रसंग को ले कर जैन कवियों ने अनेक रचनायें लिखी हैं । हिन्दी में बड़ी संख्या में पद भी लिखे गये जिनमें राजुल की मनोदशा के हृदयग्राही चित्र उपस्थित किये गये हैं ।

सम्भवतया भारतीय वाङ्मय में इस प्रकार का यह एक मात्र प्रसंग है ।

दाम्पत्य भाव के उपर्युक्त चित्र हिन्दी के जैन कवियों द्वारा रचित पदों में किस प्रकार अंकित हैं,इसका अवलोकन आगे के पृष्ठों में करेंगे ।

सुमति और चेतन

दाम्पत्य भाव के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण वे माने जा सकते हैं, जिनमें चेतन या आत्मा को पति और सुमति को पत्नी के रूप में अंकित किया गया है ।

चेतन कुलटा कुमति में अनुरक्त है और सुमति वह विरह व्यथा में झुरती रहती है । उसके दुःखों की सीमा नहीं है ।

चेतन को जब अपना भान होता है अथवा सुगुरु के समझाने से जब वह घर लौटता है — सुमति को अपनाता है तब सुमति के आनन्द का पार नहीं रहता । वह पूर्ण रूप से अपने प्रिय को अपना समर्पण कर देती है और प्रियमय हो जाती है जैसे बूंद सागर में समा जाये या ओला घुलकर पानी बन जाये ।

यही आत्मस्वरूपजैन भक्ति का परम उपादेय तत्त्व है, जिसका प्रतिपादन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में किया है । हिन्दी के जैन कवियों को इन भावों की ...ों से मिली और उन्होंने सुगम शब्दावलि में उसे प्रस्तुत किया ।

सुमति की विरह-व्यथा को भूधरदास ने निम्नलिखित पद में जो अभिव्यक्ति दी है, वह अद्भुत है। सुमति अपनी सखि से कहती है, हे सखि! क्या करूं, कहां जाऊं, अपने दुःख किससे कहूं। कंत के बिना कितने दिन बीत गये। कहां तक धीरज धरूं। कहने के लिए वे हमारे पति हैं और हम उनकी पत्नी। सच तो यह है कि कभी वे स्वप्न में भी मुंह नहीं बोले। हमारी जैसी दुखियारी और कौन होगी।

सुमति खीझ कर गाली देती है -- उस कुमति कुलटा का नाश हो जाये, जिसने मेरे प्यारे पति को विरमा रखा है।

सुमति कहती है आज 'जिन' जी से अरज करूंगी कि वे मेरे प्रीतम को समझायें।

इस तरह दुखयारी सुमति वह विरह में दिन दिन झूरती रहती है[१] --

हूं तो कहा करूं कित जाउं, सखी अब कासौं पीर कहूं री।
सुमति सती सखियनिके आगैं, पियके दुख परकासै।
चिदानन्दवल्लभ की वनिता, विरह वचन मुख भासै।।
कंत बिना कितने दिन बीते, कौंलौं धीर धरौं री।
पर घर हाँडे निज घर छाँडे, कैसी विपति भरौं री।
कहत कहावतमें सब यौं ही, वे नायक हम नारी।
पै सुपनैं न कभी मुंह बोले, हमसी कौन दुखारी।
जइयो नाश कुमति कुलटाको, विरमायो पति प्यारो।
हमसौं विरचि रच्यो रंग वाके, असमझ(?) नाहिं हमारो।।
सुंदर सुघर कुलीन नारि मैं, क्यौं प्रभु मोहि न लोरैं।
सत हू देखि दया न धरैं चित, चेरीसौं हित जोरैं।
अपने गुनकी आप बड़ाई, कहत न शोभा लहिये।
ऐरी! वीर चतुर चेतनकी, चतुराई लखि कहिये।
करिहौं आजि अरज जिनजीसौं, प्रीतमको समझावैं।
भरता भीख दई गुन मानौं, जौं बालम घर आवैं।

१- भूधरविलास, पद २६

सुमति वधू यौं दीन दुहागनि, दिन दिन झुरत निरासा ।
भूधर पीउ प्रसन्न भये विन, वसै न तिय घरवासा ।

एक अन्य पद में भूधरदास कहते हैं --

सुरति सखि से सुमति रानी कहती है कि हे सखी । सुनो मैं तुम्हें अपने मन की बात बताती हूं । दीर्घकाल से मेरा सनेही चेतनराज घर नहीं रहता और अचेतन के अधम कार्य करता है । कुजात दुरमति मेरे चिदातम प्रिय का चित्त हरण करती है। अब यह विरह व्यथा नहीं सही जाती । सखि ! कोई उपाय करो ।

यह कहकर सुमति स्वतः कहती है कि चलो `जिन` के पास चलें ।वे उपकारी हैं । वही समझायेंगे । तभी मेरा `कंथ` घर आयेगा । वह यह भी जानती है कि जब तक `काललब्धि` नहीं आयेगी, काम नहीं बनेगा, फिर भी उद्यम करना अपना कर्तव्य समझती है --

सुनि सुनि हे साथनि ! म्हारे मन की बात ।
सुरति सखीसौं सुमति राणी यौं कहे जी ।
बीत्यो है साथनि म्हारी ! दीरघकाल,म्हारो सनेही म्हारे घर ना रहे जी।
ना वरज्यो रहे साथनि म्हारी चेतनराव, कारज अधम अचेतनके करे जी ।
दुरमति है साथनि म्हारी जात कुजात,सोई चिदातम पियको चित्त हरे जी।
सिख्यो है साथनि म्हारी केती बार, क्यों ही कियो हठी हठ ना हरे जी।
कीजे हो साथनि म्हारी कौन उपाय, अब यह विरह विथा नहिं सही परे जी।
चलिचलि री साथनि म्हारी,जिनजीके पास, वे उपगारी हमें समझावसीजी ।
जगसी है सखी म्हारे मस्तक भाग जी म्हारो कंथ समझि घर आवसी जी।
कारज है सखी म्हारी ! सिद्ध न होय, जब लग काललबधिबल नहिं फलो जी[2] ।
तो पण है सखी म्हारी उद्यम जोग, सीख सयानी भूधर मन सांभलो जी ।

बनारसीदास ने अपने `अध्यात्म-गीत` में आत्मा को नायक और सुमति

२- भूधरविलास,पद ६६

की उसकी पत्नी बताया है। पत्नी पति के वियोग में इस भांति तड़प रही है जैसे जल के बिना मछली। उसके हृदय में पति से मिलने का चाव निरन्तर बढ़ रहा है। वह अपनी समता नाम की सखी से कहती है कि पति के दर्शन पा कर मैं उसमें इस तरह मग्न हो जाऊंगी, जैसे बूंद दरिया में समा जाती है। मैं अपनपा खोकर पिय में मिलूंगी, जैसे ओला गल कर पानी हो जाता है --

मैं विरहिन पिय के अधीन। ज्यों तलफौं ज्यों जल बिन मीन॥
होहुं मगन मैं दरशन पाय। ज्यों दरिया में बूंद समाय।
पिय कों मिलौं अपनपौ खोय। ओला गल पाणी ज्यों होय॥[३]

अन्त में पति तो उसे अपने घट में ही मिल गया और वह उससे मिल कर इस प्रकार एकमेक हो गयी कि द्विविधा तो रही ही नहीं। उसके एकत्व को कवि ने अनेक सुन्दर दृष्टान्तों से पुष्ट किया है। वह करतूति है और पिय कर्ता, वह सुख-सींव है और पिय सुखसागर, वह शिव-नींव है और पिय शिव-मन्दिर, वह सरस्वती है और पिय ब्रह्मा, वह कमला है और पिय माधव, वह भवानी है और पति शंकर, वह जिन-वाणी है और पति जिनेन्द्र --

पिय मोरे घट में पिय मांहि। जलतरंग ज्यों दुविधा नाहिं॥[४]

कवि ने सुमति रानी को 'राधिका' माना है। उसका सौन्दर्य और चातुर्य सब कुछ राधा के ही समान है। वह रूपसी रसीली है और प्रेम रूपी ताले को खोलने के लिए कीली के समान है। ज्ञान-मातु को जन्म देने के लिए प्राची है और आत्म-स्थल में रमने वाली सच्ची विभूति है। अपने धाम की खबरदार और राम की रमनहार है। ऐसी सन्तों की मान्य, रस के पन्थ और ग्रन्थों में प्रतिष्ठित और शोभा की प्रतीक राधिका सुमति रानी है --

रूप की रसीली, प्रेम कुलप की कीली,
शील सुधा के समुद्र फलीलि सीलि सुखदाई है।

५- नारसीविलास, अध्यात्मगीत, पृ० १५६-६०
६- वही, पृ० १६१

प्राची ज्ञानभान की अथाची है निदान की,
सुराची निरवाची ठौर सांची ठकुराई है।
धाम की खबरदार राम की रमनहार,
राधा रस पंथनि में ग्रन्थनि में गाई है।
सन्तन की मानी निरवानी रूप की निसानी,
यातैं सुबुद्धि रानी राधिका कहाई है।[५]

सुमति अपने पति चेतन से प्रेम करती है। उसे अपने पति के अनन्तज्ञान, बल और वीर्यवाले पक्ष पर एकनिष्ठा है किन्तु वह कर्मों की कुसंगति में पड़कर भटक गया है। बहुत दिन बाद बाहर भटकने के बाद चेतन राजा आज घर आ रहा है। सुमति के आनन्द का कोई ठिकाना नहीं है। वर्षों की प्रतीक्षा के बाद पिय के आगमन को सुन कर भला कौन प्रसन्न न होती होगी। सुमति आह्लादित होकर अपनी सखी से कहती है -- हे सखी! देखो आज चेतन घर आ रहा है। वह अनादि काल तक दूसरों के वश में हो कर घूमता फिरा, अब उसने हमारी सुध ली है। अब तो वह भगवान् जिन की आज्ञा को मान कर परमानन्द के गुणों को गाता है। उसके जन्म जन्म के पाप भी पलायन कर गये हैं। अब तो उसने ऐसी युक्ति रच ली है, जिससे उसे संसार में फिर नहीं आना पड़ेगा। अब वह अपने मनभाये परम अखंडित सुख का विलास करेगा --

देखो मेरी सखी ये आज चेतन घर आवे।
काल अनादि फिर्यो परवश ही अब निज सुधहिं चितावै।
जनम जनम के पाप किये जे, ते छिनमाहिं बहावै।
श्री जिन आज्ञा शिर पर धरतो परमानन्द गुण गावै।
देत जलांजुलि जगत फिरन को ऐसी जुगति बनावै।[६]
विलसै सुख निज परम अखंडित, मैया सब मन भावै।

५- नाटक समयसार, सर्वविo पद्य ७४

६- ब्रह्मविलास, पद १४

पति को देखते ही पत्नी के अन्दर से परायेपन का भाव दूर हो जाता है। द्वैध हट जाता है और अद्वैत उत्पन्न हो जाता है। ऐसा ही एक भाव बनारसीदास ने उपलब्ध किया है। सुमति चेतन से कहती है, "हे प्यारे चेतन! तेरी ओर देखते ही परायेपन की गगरी फूट गयी, दुविधा का अंचल हट गया और समूची लज्जा पलभरमें पलायन कर गयी। कुछ समय पूर्व तुम्हारी याद आते ही मैं तुम्हें खोजने के लिए अकेली ही राज-पथ को छोड़ कर भयावह कान्तार में घुस पड़ी थी। वहां काया नगरी के भीतर तुम अनन्त बल और ज्योतिवाले होते हुए भी कर्मों के आवरण में लिपटे पड़े थे। अब तो तुम्हें मोह की नींद छोड़ कर सावधान हो जाना चाहिए --

बालम तुझ तन चितवन गागरि फूटि।
अंचरा गो फहराय सरम गै छूटि॥
काय नगरिया भीतर चेतन भूप।
करम लेप लिपटा बल ज्योति स्वरूप॥ ७

सखी अपनी बाला सुमति की प्रशंसा करते हुए चेतन से कहती है, "हे लालन, मैं अमोलक बाला लायी हूं। तुम देखो तो वह कैसी अनुपम सुन्दरी है। ऐसी नारी तीनों लोकों में दूसरी नहीं है। और हे चेतन! इसकी प्रीति भी तुमसे ही सनी हुई है। तुम्हारी और इस राधे की एक दूसरे पर अनन्त रीझि है। उसका वर्णन करने में मैं पूर्णतया असमर्थ हूं --

लाई हौं लालन बाल अमोलक, देखहु तौ तुम कैसी बनी है।
ऐसी कहूं तिहुं लोक में सुन्दर और न नारि अनेक धनी है।
याहि तें तोहि कहूं नित चेतन, याहू की प्रीति तु तो सौं सनी है।
तेरी औ राधे की रीझि अनन्त सु मो पै कहूं यह जात गनी है॥ ८

कुमति ने मेरे 'पीउ' को कैसी सीख दी है, जिससे वह स्व-पर विवेक

७- बनारसी विलास, पृ० २२८

८- ब्रजविलास, पद २८

छोड़ कर पर के साथ रचा हुआ है और कठपुतली की तरह नाचता रहता है। अपनी रत्न-त्रय निधि को गंवा कर कर्म जोड़ता रहता है। रंक हो कर घर-घर डोलता है। कैसी हालत हो गयी है। यह कुमति मेरी जनम की वैरन है जिसने मेरे प्रिय को आपमय बना रहा है। पराधीन हो कर के दुःख भोग रहा है, अपनी सुधि भूल गयी है। यह पक्का भोंदू है।

सुमति की यह अरज सुन कर सतगुरु ने कृपा करके बिछुड़े 'कंत' को मिला दिया।

दई कुमती मेरे पीऊ को कैसी सीख दई।
स्वपर छांडि पर ही संग राचत, नाचत ज्यौं चकई।
रत्नत्रय निज निधि बिगाय कैं, जोड़त कर्म कई।
रंक भये घर घर डोलत, अब कैसी निरमई।
यह कुमति म्हारी जनम की वैरिनि पीय कीनों आपुमई।
पराधीन दुख भोगत भोंदू, निज सुध बिसरि गई।
'मानिक' अरु सुमति अरज सुनि, सतगुरु तो कृपा भई।[६]
बिछुरे कंत मिलावहु स्वामी, चरण कमल बलि गई।

होली और फगुवा

लौकिक जीवन के रसमय प्रसंगों को आध्यात्मिक और अलौकिक रसवत्ता कैसे प्रदान की जा सकती है, इसका अंकन जैन कवियों की रचनाओं में देखने को मिलता है। 'फागु' और 'होली' को ले कर जैन कवियों ने अनेक पद भी लिखे और स्वतन्त्र रचनाएं भी लिखीं। उनमें होली के अंग उपांगों का आत्मा से रूपक मिलाया गया है। उनमें आकर्षण के साथ पावनता भी है।

बनारसीदास का 'फाग' प्रसिद्ध है। उसमें आत्मा रूपी नायकने शिवसुन्दरी से होली खेली है। कवि ने लिखा है, 'सहज आनन्द रूपी बसन्त आ गया है, और

---

६. हिन्दी पद संग्रह, पद ३७६

शुभ भाव रूपी पत्ते लहलहाने लगे हैं। सुमति रूपी कोकिला गहगही हो कर गा उठी है। और मन रूपी भौंरे मदोन्मत्त हो कर गुंजार कर रहे हैं। सुरतिरूपी अग्निज्वाला प्रकट हुई है, जिससे अष्टकर्म रूपी वन जल गया है। अगोचर अमूर्तिक आत्मा धर्मरूपी फाग खेल रहा है। इस भाँति आत्मध्यान के बल से परम ज्योति प्रकट हुई है जिससे अष्टकर्म रूपी होली जल गयी और आत्मा शान्तरस में मग्न हो कर शिव-सुन्दरी से फाग खेलने लगा।[१०]

जगतराम की होलियों में चित्र उपस्थित करने की अद्भुत क्षमता है। एक ओर जिनराजा हैं, दूसरी ओर शुद्ध परिणति रानी। दोनों एक दूसरे के हृदय को, अनुभव रूपी रंग से, सुरति रूपी पिचकारी के द्वारा भिगो रहे हैं। दोनों के अंग-अंग रंग में सराबोर हो गये हैं। कोई बचा नहीं है। इस सुख में दोनों लीन हैं। किसी प्रकार भी बिछुड़ते नहीं बनता। दोनों अतुल अनन्त वीर्य से युक्त हैं। प्रभु के इस अद्भुत कौतुक को देख कर दर्शक का मन रूपी नट उमंगित हो कर नाचे बिना नहीं रह सकता --

होरी कौ आछयौ ख्याल मच्यौ है।
जिनराजा सुद्धि परिणति रानी, रस बस दोऊ नाहि रच्यौ है।
अनुभव रंग सुरति पिचकारी, छिरकत हिय रै यौ निरुच्यौ है।
अंग अंग सरवंग रंगवगे, दुहुधां कोऊ नाहि बच्यौ है।
सुख में लीन न बिछुरत क्यों हु, वीरज अतुल अनन्त जच्यौ है।
जग प्रभु को अद्भुत कौतुक लखि मन नट मेरो उमगि नच्यौ है।[११]

जगराम के प्रभु के लिए जैसी अच्छी होली बन पड़ी है अन्य किसी के लिए नहीं। उनकी निज परिणति रानी ने उन्हें भी अपने रंग में रंग लिया है। उसका रंग ऐसा-वैसा नहीं है। वह ज्ञान रूपी सलिल, दृगरूपी केशर और चारित्र रूपी चोवा को मिला कर बनाया गया है। रंग के साथ ही दूसरी ओर से दयारूपी गुलाल-अबीर

१०- बनारसीविलास, अध्यात्म फाग, पृ० १५४-५५

११- पदसंग्रह सं० ४६२, उद्धृत हिन्दी जैन भक्ति० कवि, पृ० ३६२

का भी प्रयोग हो रहा है। रानी ने सुख रूपी नशे में राजा को छका डाला है। नय और व्रत रूपी नर्तकियां नाना भावों से नृत्य करती हैं। वे स्याद्वाद रूपी नाद को अलापते हुए भिन्न-भिन्न लय और तानों से रिझाती रहती हैं। रानी ने राजा को इस प्रकार रस के वश में कर लिया है कि वह अन्यत्र नहीं जा पाता। उससे सर्वस्व रूपी फगुवा ले कर अपने मन्दिर में विरमा लिया है --

ऐसी नीकी होरी प्रभु ही कैं बनि आवै।
निज परनति रानी रंग भीनी अपने रंग खिलावै।
ग्यान सलिल दृग केसर चारित चोवा चरचि रचावै।
दया गुलाल अबीर उड़ावै सुषमद छकनि छकावै
नय व्रत नृत्यकारिनी नाचै नाना भाव बतावै।
स्याद्वाद सोहि नाद अलापत लय तानन सौं रिझावै।
ऐसे रस बस करि लीने जो अंत न जानन पावै।
सरवस फागुवा ले जगपति पै निज मन्दिर विरमावै।[१२]

आनतराय ने होली का एक अद्भुत चित्र खींचा है। दो जत्थों के मध्य होली खेली जा रही है। एक ओर तो बुद्धि, दया, क्षमारूपी बहुटियां हैं और दूसरी ओर आत्मा के रत्नत्रय गुण रूपी पुरुष तैयार खड़े हैं। ज्ञान और ध्यानरूपी डफ तथा ताल बज रहे हैं, उनसे घनघोर अनहद शब्द निकल रहा है। धर्मरूपी लाल रंग का गुलाल उड़ रहा है, और समता रूपी रंग दोनों ही पक्षों ने घोलरखा है। दोनों ही दल प्रश्नों की पिचकारी भर-भर कर जोर लगा कर एक दूसरे पर छोड़ते हैं। इधर से पुरुष वर्ग पूछता है कि तुम किसकी नारी हो, तो उधर से स्त्रियां पूछती हैं कि तुम किसके होरा हो। आठ कर्मरूपी काठ अनुभव रूपी अग्नि में जल भुक कर शान्त हो गये। फिर तो सज्जनों के नेत्ररूपी चकोर, शिवरमणी के आनन्दकन्द की छवि को टकटकी लगा कर देखते ही रहे --

आयौ सहज बसन्त खेलैं सब होरी होरा।

१२- पदसंग्रह सं० ४६२, अद्भुत हिन्दी जैन भक्ति० कवि, पद ५८

उत बुधि दया छिमा बहु ठाढीं इत जिय रतन सजे गुन जौरा ।
ज्ञान ध्यान डफ ताल बजत हैं अनहद शब्द होत घनघोरा ।
धरम सुराग गुलाल उड़त है समता रंग दुहूने घोरा ।
परसन उत्तर भरि पिचकारी छोरत दोनों करि करि जोरा ।
इततैं कहैं नारि तुम काकी उततैं कहैं कौन को छोरा ।
आठ काठ अनुभव पावक में जल बुझ शांत भई सब ओरा ।[१३]
द्यानत शिव आनन्दचन्द छवि देखें सज्जन नैन चकोरा ।।

द्यानतराय द्वारा प्रस्तुत दो और चित्र दर्शनीय हैं। नगर में होली हो रही है। सर्वत्र आनन्द छाया है। बेचारी सुमति उससे नितान्त वंचित है। उसका पति चेतन घर नहीं है। वह दुःखी है, अतीव दुखी। उसका दुःख केवल विरह-जन्य ही नहीं है, अपितु इसलिए भी है कि पति सौत कुमति के घर होली खेलरहा है। किस भांति लाया जाये। अन्त में उसने "जिन स्वामी" से प्रार्थना की कि उसे समझा कर लौटा लाने में सहायता करें --

नगर में होरी हो रही हो ।
मेरो पिय चेतन घर नाहीं, यह दुख सुनि है को ।
सौति कुमति के राचि रह्यौ है, किह विधि ल्याऊं सो ।
द्यानति सुमति कहै जिन स्वामी, तुम कछु सिखा द्यो ।

पिया घर नहीं तो प्रेमिका किससे होली खेले। वह कहती है कि मेरे आतमराम पिय घर नहीं हैं। मेरे लिए इस वर्ष की होली कोरी है। ऐसे समय वह उस होली की याद करती है, जब वह उपशम की केशर घोल कर प्रियतम के साथ खेली थी। सुमति भगवान् से हाथ जोड़ कर कहती है कि हे प्रभु मैं पुनः वह समय कब पाऊंगी--

पिया बिन कासौं खेलौं होरी ।
आतमराम पिया घर नाहीं मोकू होरी कोरी ।

१३- द्यानत पद संग्रह, पद ८६

येक बार प्रीतम हम खेले उपसम केसरि घोरी ।
धानति वह समया कब पाऊं सुमति कहे कर जोरी ।[१४]

और आखिर सुमति सफल हुई। चेतनराय आ गये । होली तो अब खेली जायेगी । सुमति कहती है कि प्रीतम के बिना बहुत काल बीता । यह भला हुआ कि यह होली आ गयी और चेतनराय घर आ गये । अब जी भर होली खेलूंगी । सम्यक्त्व रूपी रंग-गुलाल का उपयोग करेंगे और विराग का राग सुन्दर लगेगा । धानत कहते हैं कि सुमति को जो सुख मिला उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है--

भली भई यह होरी आई आये चेतनराय ।
काल बहुत प्रीतम बिन बीते अब खेलौं मन लाय ।
सम्यक रंग गुलाल बरतमें राग विराग सुहाय ।
धानत सुमति महा सुख पायी सो वरन्यौ नहिं जाय ।[१५]

सुमति अपनी सखी समता से कहती है कि आज रंग भरी होली आयी है । मेरे पिय चेतन आ गये । वे मन को भाये हैं । मैंने करुणा की केसर घोल कर होली खेलने को रखी है । ज्ञान की गुलाल और प्रीत की पिचकारी है । ध्यान का ढोल बज रहा है । सुमति कहती है कि प्रभु ने अब मुझ पर दया की है --

होरी आई आज रंग भरी है ।
रंग भरी रस भरी रसौं ? भरी है ।।
चेतन पिय आये मन भाये करुना केसर घोर धरी है ।
ज्ञान गुलाल पीत पिचकारी ध्यान महाधुनि होत खरी है ।।
धानत सुमति कहै समतासौं अब मोपै प्रभु दया करी है ।[१६]

सुमति कहती है कि चेतनराय आये हैं । अब तो मैं होरी अवश्य खेलूंगी ।

१४- धानत पद संग्रह, पद १६३
१५- वही, पद २१०
१६- वही, पद ३२३

सम्यग्दर्शन के वस्त्र ज्ञान के रंग में भिगो कर, चारित्र की गुलाल लगा कर, आनन्द का अतर (इत्र), सुनय की पिचकारी तथा अनहद बीन बजा कर स्वयं रीझेंगी और प्रिय को भी रिझाऊंगी। सुमति को सुखी देख कर उसकी सखियां भी प्रसन्न हुईं —

खेलौंगी होरी आये चेतनराय।
दरसन वसन ज्ञान रंग भीने चरन गुलाल लगाय।
आनंद अतर सुनय पिचकारी अनहद बीन बजाय।
रीझौं आप रिझावौं पियको प्रीतम लौं गुन गाय।
द्यानत सुमति सुखी लखि सुखिया सखि भईं बहु भाय। १७

नेमीश्वर अपने सुगुन राजाओं के साथ होली खेलने निकले। महावैराग्य रूप बसन्त में समकित रूपी अनुपम सुवास फैल रही है। महाव्रत के वस्त्र पहने हैं। क्षमा का छिड़काव किया जा रहा है। प्रीति की पिचकारी है और रीझ का गहरा रंग है। ज्ञान की सुहावनी गुलाल है। अनुभव का अतर(इत्र) ख्याल है। प्रेम का पखावज बज रहा है। स्व और पर दो तत्व दो ताल हैं। संजम भली सिरनी है। ध्यान स्वभाव मेवा है। समरस शीतल फल हैं। परम पद की चाह पान है। आत्मध्यान अग्नि है। कर्म काष्ठ समूह है। धर्म की हुलहड़ी खेल कर सदा सहज सुखकारी, राजीमति मन में कहती है हमें छोड़ कर शिवनारि को भजकरि कब उसके भरतार बनेंगे —

नेमीश्वर खेलन चले सुगुन सखा संग भूप।
महा विराग बसन्त में समकित सुवास अनूप।
वसन महाव्रत धार के छिरकै छिमा बनाय।
पिचकारी कर प्रीतिकी रीझ रंग अधिकाय।
ज्ञान गुलाल सुहावनी अनुभव अतर सुख्याल।
प्रेम पखावज बजत तत्व स्वपर दो ताल।
संजम सिरनी अति भली मेवा ध्यान सुभाव।
सम रस शीतल जल फल लहैं पान परम पद चाव।

१७- द्यानत पद संग्रह, पद ७४

आतम ध्यान आन भई करम काठ समुदाय ।
धर्म झुलहडी खेलके सदा सहज सुखदाय ।
रजमति मन में कहति है हम तजि भजि शिव नार ।
धानत हम कब होंहिगे शिववनिताभरतार । [१८]

बुधजन ने अपने पदों में होली के जो रंग भरे हैं, उनकी छटा कुछ और ही है । सुमति के पिय घर नहीं हैं । होली आ गयी है । वह कहती है -- सब लोग होली रच रहे हैं, मैं किसके संग होली खेलूं । कुमति हरामिनि ने मेरे ज्ञानी पिया को लोभ और मोह से ठग लिया है । झूठ मिठाई खिला कर जबरन गुणों को छीन लिया है । आप तीन लोक के साहिब हैं । इनके साथ कौन जोड़ बंध सकता है । अपनी सुधि कभी नहीं लेते । दास हो कर दूसरों की पौर पर डोलते रहते हैं । सुमति गुरु से प्रार्थना करती है कि हे दयाल मेरी अरज सुनिये । आपके हा, हा करती हूं, पैर पड़ती हूं, मेरे चेतन पिया को मेरी ओर कर दीजिए --

और सबै मिलि होरि रचावें हूंकाके संग खेलौंगी होरी ।
कुमति हरामिनि ज्ञानी पियापै लोभ मोह की डारी ठगौरी ।
मोरैं झूठ मिठाई खवाई खोंसि लये गुन करि बरजोरी ।
आप हि तीन लोकके साहिब कौन करै इनके सम जोरी ।
अपनी सुधि कबहूं नहिं लेते दास भये डोलैं पर पौरी ।
गुरु बुधजनतैं सुमति कहत हैं सुनिये अरज दयाल सु मोरी ।
हा हा करत हूं पांय परत हूं चेतन पिय कीजे मो ओरी । [१९]

बुधजन उस चेतन को समझाते हुए कहते हैंकि खोटे भेष बना कर तुम इधर-उधर डोलते, फिरते हो और दुःख पाते हो । यह तुम्हारी भोली बुद्धि है । बगौरी के साथ विलास करना चाहते हो तो सुमति के साथ होरी खेलो। दूसरों -रीति छोड़ो । यह उपयुक्त जोड़ी है । इधर उधर डोलते रहे हो । अब अपनी पौर

संग्रह, पद १६६
स, पद ४३

में आओ । निज रस फगुवा क्यों नहीं बांटते । चार कषायों को छोड़ कर सम्यक्त्व की केशर घोलो और मिथ्यात्व के पत्थर को फेंक कर अपनी गुलाल की झोरी धारण करो ।

चेतन खेल सुमति संग होरी ।
तोरि आनकी प्रीति सयाने भली बनी या जोरी ।
डगर डगर डोले है यौं ही आव आपनी पौरी ।
निज रस फगुवा क्यों नहिं बांटो नातर खारी तोरी ।
छार कषाय त्यागी या गहि ले समकित केशर घोरी ।
मिथ्या पाथर डारि धारि ले निज गुलाल की झोरी ।
लोटे मेष धरें डोलत है इस पावै बुधि थोरी ।
बुधजन अपना मेष सुधारो ज्यौं विलसो शिवगोरी ।[२०]

बुधजन उन गुरु की बलिहारी जाते हैं जिन्होंने चेतन की भोली मति को दूर कर दिया जिससे अब वह कुमति की बात नहीं सुनता और सुमति की ओर ही देखता है । सुमति कहती है अब चेतनराय घर आ गये हैं । अब होली खेलूंगी । निज स्वभाव के जल का हौज़ भरा कर उसमें निजरंग की रोली घोलूंगी । निज तन ला कर शुद्ध पिचकारी से निजमति छिड़कूंगी । या कर, रिझाकर वश में कर लूंगी और अन्यत्र नहीं जाने दूंगी ।

अब घर आये चेतनराय सजनी खेलौंगी मैं होरी ।
आरस सोच कानि कुल हरिके धरि धीरज बरजोरी ।
बुरी कुमति की बात न बूझैं चितवत है मो ओरी ।
वा गुरुजन की बलि बलि जाऊं दूरि करी मति मोरी ।
निज सुभाव जल हौज भराऊं घोरूं निजरंग रोरी ।
निज ल्यौं ल्याय शुद्ध पिचकारी छिरकन निज मति दौरी ।

२०- बुधजन विलास, पद ४०

गाय रिझाय वश करिके जावन यौं नहिं पौरी
बुधजन रचि मचि रहूं निरन्तर शक्ति अपूरब मोरी ।[२१]

अब बुधजन की होली का रंग कुछ और ही है । निजपुर की होली का क्या कहना । एक ओर से उमंग में चिदानन्द जी आये और दूसरी ओर से सुमति गोरी । लोक लाज और कुल की मर्यादा छोड़ दी । झोली में ज्ञान की गुलाल भरी है । समकित का केसरिया रंग बनाया और चारित्र की पिचकारी में भर-भर कर छोड़ रहे हैं । मनोहर अजपा गान गाया जा रहा है । अनहद नाद की झड़ी बरस रही है । जो यह होली देखने आया वह भी इस होली के रंग में भीग गया । यह अनोखा 'ख्याल' देखो --

निजपुर में आज मची होरी ।
उमंगि चिदानन्द जी इत आये इत आई सुमती गोरी ।
लोकलाज कुलकानि गमाई ज्ञान गुलाल भरी झोरी ।
समकित केसर रंग बनायो चारित की पिचकी छोरी ।
गावत अजपा गान मनोहर अनहद झरसौं बरस्यौ री ।
देखन आये बुधजन भीगे निरख्यौ ख्याल अनोखी री ।[२२]

दौलतराम ने होली के अपने चित्रों में कुछ अलग प्रकार के रंग भरे हैं । उनकी कल्पना-प्रवणता और दार्शनिकता ने रंगों को खूब उभारा है । एक पद में वे कहते हैं --

एक दिन सरस वसन्त के समय केशव की सभी पत्नियों ने नेमिकुमार को घेर लिया । रुक्मिनी कुंकुम ले कर मुख पर मलने लगी । गांधारी रंग छिड़कने लगी । सत्यभामा जोर से पिचकारी छोड़ने लगी और कहने लगी कि व्याह करना कबूल करो तभी छोड़ेंगे । प्रभु ने 'ओम्' कहा । तभी छोड़ कर सभी नारियां पुलकित हो कर अपने अपने भवन को चली गयीं --

---

२१- बुधजन विलास, पद ६६
२२- वही, पद ५१

लाल कैसे आवोगे, असरन शरन कृपाल ।
इक दिन सरस वसंत समय में, केशव की सब नारी ।
प्रभु प्रदच्छना रूप खड़ी ह्वै, कहत नेमि पर वारी ।
कुंकुम ले मुख मलत रुकमनी, रंग छिरकत गांधारी ।
सतभामा प्रभु ओर जोर कर छोरत है पिचकारी ।
व्याह कबूल करो तौं छूटौ, इतनी अरज हमारी ।
ओंकार कहकर प्रभु मुख के छोड दिये जगतारी ।
पुलकित बदन मदन पितु-भामिनि, निज निज सदन सिधारी ।
दौलत जादव वंश व्योम शशि, जयौ जगत हितकारी ।[२३]

दौलतराम कहते हैं -- मेरा मन ऐसी होली खेलता है मन का मृदंग सजा कर तन का तानपुरा बना कर, सुमति की सारंगी और दोनों हाथों का ताल बजा कर पंच पद (परमेष्ठी) का राग गा रहा है। सम्यक्त्व रूपी जल झारी में भर कर करुणा रूपी केशर घोली है। ज्ञान की पिचकारी दोनों हाथों से संभाली है और पांचों इन्द्रियों को भिगो दिया है। चार प्रकार के दान का गुलाल भर भर मुट्ठी चला रहा है। तप का मेवा निज की झोली में भरा है, यश का अबीर उड़ रहा है, जिन धाम में रंग मच रहा है। दौलतराम कहते हैं कि ऐसी ऐसि होली खेलने से भव दुःख टल जाते हैं जिनका शरण लेने से ही लाज बच सकती है।

मेरो मन ऐसी खेलत होरी ।
मन मिरदंग साजकरि त्यारी तनको तमुरा बनो री ।।
सुमति सुरंग सारंगी बजाई ताल दोऊ करजोरी ।
राग पांचौं पद कोरी ।
समकित रूप नीर भर झारी करुना केशर घोरी ।
ज्ञानमई ले कर पिचकारी दोऊ करमाहिं सम्हौरी ।
इन्द्री पांचों सखि बोरी ।

२३- दौलत जैन पद संग्रह, पद १२२

चतुरदानको है गुलाल सौ भरि भरि मुठि चलौ री ।
तप मेवा की भरि निज फोरी यश की अबीर उड़ौ री ।
रंग जिनधाम मचौ री ।
दौल बाल खेलें अस होरी भवभव दु:ख टलौ री ।
शरना लेइक श्रीजनको री जग में लाज हो तोरी ।[२४]
मिले फगुआ शिव गौरी होरी ।

एक ओर रंगीले आतमराम हैं दूसरी ओर सुबुद्धि किशोरी है । इनके संग ज्ञान सखा हैं, उनके साथ समता गोरी है । निर्मल मन जल तथा दया रस की केसर उदय के कलश में घोली है । सम्यक् समझ की सरल पिचकारी भर-भर कर सखियाँ पर छोड़ रहे हैं । सतगुरु की सीख की तान धर कर होरा-होरी गा रहे हैं । दान गुलाल को फोली में भर कर पूर्वकर्मबन्ध के अबीर को उड़ा रहे हैं । भूधर कहते हैं सुमति सुहागिन के बड़े भाग हैं । वही नारि सुलच्छनी कहलाती है जिसका पति उससे रति जोड़े रखता है ।

अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी अलख अमूरति की जोरी ।
इतमें आतम राम रंगीले उतमें सुबुद्धि किसोरी ।
या के ज्ञान सखा संग सुन्दर वाके संग समता गोरी ।
सुचि मन सलिल दया रस केसरि उदै कलस में घोरी ।
सुधी समकि सरल पिचकारी सखिय प्यारी भरि भरि छोरी ।
संत गुरु सीख तान धर पद की गावत होरा होरी ।
पुरब बंध अबीर उड़ावत दान गुलाल भर फोरी ।
भूधर आजि बड़े भागिन सुमति सुहागिन मोरी ।
सो ही नारि सुलछिनी जग में जासौं पतिनै रति जोरी ।[२५]

२४- दौलत जैन पद संग्रह, पद ५८
२५- हिन्दी पद संग्रह, पद १७६

मिथ्यात्व की शिशिर ऋतु बीत गयी । काल-लब्धि रूपी बसन्त ऋतु आ गई । चिदानन्द घर आ गये । अब मैं होली खेलूंगी । प्रिय के संग खेलने के लिए हम अनन्त काल तक तरसी हैं । अब भाग्य जगा है । विरह का अन्त आ गया है । अब फाग रचाऊंगी । आनन्द का जल और उमंग की पिचकारी नीकी भांति छोडूंगी । आज कुमति सौतन के वियोग से मेरे अनन्त हर्ष है । ऐसे दिन दुर्लभ हैं --

होरी खेलूंगी घर आए चिदानन्द ।
शिशर मिथ्यात गई अब आई काल की लब्धि बसन्त ।
पीय संग खेलनि कौं हम सखियां तरसी काल अनन्त ।
भाग जग्यो अब फाग रचानौं आयौ विरह को अन्त ।
सरधा गागरि में रुचि रूपी केसर घोरि तुरन्त
आनन्द नीर उमंग पिचकारी छोडूंगी नीकी भंत ।
आज वियोग कुमति सौतनिकौं मेरे हरष अनन्त ।
बुधर धनि रही दिन दुर्लभ सुमति सखि विहसंत । २६

आनन्दघन ने अपने पदों में विरह की विविध दशाओं के अनुपम चित्र खींचे हैं । प्रिया विरहणी है । उसका पति बाहर चला गया है । वह पति बिना सुध-बुध खो बैठी है । महल के झरोखे में उसकी आंखें झूल रही हैं । पति नहीं आया । अब वह कैसे जीवे । विरह रूपी भुवंगम उसकी प्राणरूपी वायु को पी रहा है । शीतल पंखा, कुमकुमा और चन्दन से कुछ नहीं होता । शीतल पवन से विरहानल हटता नहीं, अपितु तन-ताप को और भी बढ़ाता है । ऐसी ही दशा में एक दिन होली जल उठी । सभी चांचर के खेल में मस्त हो गयीं । विरहिणी कैसे खेले । उसका मन ब जल रहा है । उसका समूचा तन खाक (धूल) हो कर उड़ा जाता है । होली एक ही दिन जलती है,उसका मन तो सब दिन जलता है । होली के जलने में आनन्द है और इस जलन में तीव्र दुःख ।

पिया बिनु सुध बुध भूली हो ।

२६- हिन्दी पद संग्रह, पद १६३

आंख लगाइ दुख महल के फरुखे फूली हो ।
प्रीतम प्राणपति बिना प्रिया, कैसें जीवे हो ।
प्रान पवन विरहा दशा, भुयंगम पीवे हो ।
शीतल पंखा कुमकुमा, चन्दन कहा लावे हो ।
अनल न विरहानल परै, तन ताप बढावे हो ।
फागुन चाचर इक निशा, होरी सिरगानी हो ।
मेरे मन सब दिन जरे, तन खाख उड़ानी हो ।[२७]

आनन्दघन अनन्य प्रेम को जिस भांति आध्यात्मिक पक्ष में घटा सके, वैसा हिन्दी का अन्य कोई कवि नहीं कर सका । कबीर के दाम्पत्य, जायसी के अलौकिक प्रेम, घनानन्द के सुजान की अनुरक्ति से हजार गुनी एकतानता आनन्दघन के पदों में प्राप्त होती है । जैन संत होने के कारण आनन्दघन को अध्यात्म की जो अनुभूति थी उसे वे हृदय की सम्पूर्ण तल्लीनता से व्यक्त कर सके । एक स्थान पर उन्होंने लिखा है --'सुहागिन के हृदय में निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति से ऐसा प्रेम जगा है कि अनादिकाल से चली आने वाली अज्ञान की नींद समाप्त हो गयी । हृदय के भीतर भक्ति के दीपक ने एक ऐसी सहज ज्योति को प्रकाशित किया है जिससे घमंड स्वयं दूर हो गया और अनुपम वस्तु प्राप्त हो गयी । प्रेम एक ऐसा अचूक तीर है कि जिसको लगता है वह ढेर हो जाता है । वह एक ऐसा वीणा नाद है जिसको सुन कर आत्मा रूपी मृग तिनके तक चरना भूल जाता है । प्रभु तो प्रेम से मिलता है, उसकी कहानी कही नहीं जा सकती --

सुहागण जागी अनुभव प्रीत ।
निन्द अज्ञान अनादि की मिट गई निज रीति ।।
घट मन्दिर दीपक कियो, सहज सुज्योति सरूप ।
आप पराइ आप ही ठानत वस्तु अनूप ।
कहा दिखावुं और कूं, कहा समझाउं भोर ।
तीर अचूक है प्रेम का, लागे सो रहे ठोर ।

२७- आनन्दघन पद संग्रह, पद ४१

नाद विलुद्धो प्राण हूं, गिने न तृण मृगलोय ।
आनन्दघन प्रभु प्रेम का अकथ कहानी कोय ।।[२८]

प्रेमी अपनी प्रेमिका के पास स्वयं जाता है । और ऐसे अवसर पर प्रेमिका के आनन्द का पारावार नहीं रहता । आनन्दघन की सुहागिन नारी के नाथ भी स्वयं आये हैं, और अपनी तिया को प्रेमपूर्वक स्वीकार किया है । लम्बी प्रतीक्षा के बाद आये नाथ की प्रसन्नता में, पत्नी ने भी विविध भांति के शृंगार किये हैं । उसने प्रेम, प्रतीति, राग और रुचि के रंग में रंगी साड़ी धारण की है, भक्ति की मेंहदी राची है और भाव का सुखकारी अंजन लगाया है । सहज स्वभाव की चूड़ियां पहनी हैं और स्थिर थिरता का भारी कंगन धारण किया है । ध्यान रूपी उरबसी गहना वक्ष-स्थल पर पहा है और पिय के गुण की माला को गले में पहना है । सुरत के सिन्दूर से मांग को सजाया है और निरति की वेणी को आकर्षक ढंग से गुंथा है । उसके घट में त्रिभुवन की सबसे अधिक प्रकाश्यमान ज्योति का जन्म हुआ है । वहां से अनहद का नाद भी उठने लगा है । अब तो उसे लगातार एकतान से पियरस का आनन्द उपलब्ध हो रहा है ।

आज सुहागन नारी ।। अवधू आज० ।।
मेरे नाथ आप सुधि लीनी, कीनी निज अंगचारी ।।
प्रेम प्रतीत राग रुचि रंगत, पहिरे जिनी सारी ।
महिंदी भक्ति रंग की राची, भाव अंजन सुखकारी ।
सहज सुभाव चूरीयां पैनी, थिरता कंगन भारी ।
ध्यान उरबसी उर में राखी, पिय गुन माल अधारी ।।
सुरत सिन्दूर मांग रंग राती, निरते बेनी समारी ।
उपजी ज्योत उद्योत घट त्रिभुवन, आरसी केवल कारी ।।
उपजी धुनि अजपा की अनहद, जीत नगारे वारी ।
कहे सदा आनन्दघन बरषत, बिन मोरे इक तारी ।।[२९]

२८- आनन्दघन पद संग्रह, पद ४
२९- वही, पद २०

ठीक इसी भांति बनारसीदास की नारी के पास भी निरंजनदेव स्वयं प्रकट हुए हैं। वह इधर उधर भटकी नहीं। उसने अपने हृदय में ध्यान लगाया और निरंजनदेव आ गये। अब वह अपने खंजन-जैसे नेत्रों से उसे पुलकायमान हो कर देख रही है, और प्रसन्नता से भरे गीत गा रही है। उसके पाप और भय दूर भाग गये हैं। परमात्मा जैसे साजन के रहते हुए, पाप और भय कैसे रह सकते हैं। उसका साजन साधारण नहीं है, वह कामदेव-जैसा सुन्दर और सुधारस-सा मधुर है। वह कर्मों का क्षय कर देने से तुरन्त मिल जाता है --

म्हारे प्रगटे देव निरंजन।
अटको कहा कहा सर भटकत, कहा कहुं जन रंजन।
खंजन दृग दृग नयनन गाऊं, चाऊं चितवत रंजन।
सजन घट अंतर परमात्मा, सकल दुरित भय भंजन।
वोही कामदेव होय काम, घट वोही सुधारस मंजन।[30]
और उपाय न मिले बनारसी सकल करमक्षय खंजन।।

नेमि-राजुल

जैन कवियों को नेमि-राजुल का कथा प्रसंग दाम्पत्य रति के एक सुदृढ़ आलम्बन के रूप में प्राप्त हुआ। इस कथानक को ले कर हिन्दी के जैन कवियों ने अनेक रचनाएं लिखी हैं। राजशेखर सूरि की 'नेमिनाथ फागु' हिन्दी की एक प्रसिद्ध कृति है। इसमें नेमिनाथ और राजुल की कथा का काव्यमय निरूपण हुआ है। विवाह के लिए सजी राजुल में मानो मृदुल काव्यत्व ही साक्षात् हो उठा है। राजुल की शील-सनी शोभा में कुछ ऐसी बात है कि उससे पवित्रता की प्रेरणा मिलती है, वासना की नहीं --

किम किम राजलदेवि तणउ सिणगारु भणेवउ।
चंपकगोरी अइधोई अंगि चंदनु लेवउ।।
खुंपु भराविउ जाइ कुसुम कस्तूरी सारी।

30- बनारसी विलास, पृ० २४०

सीमंतह सिंदूर रेह मोतीसरि सारी ।
नवरंगि कुंकुमि तिलय किय रयण तिलउ तसु भाले ।
मोती कुंडल कन्नि थिय बिंबालिय कर जाले ।
नरतिय कज्जलरेह नयणि मुंह कमलि तंबोलो ।
नागोदर कंठलउ कंठि अनुहार विरोलो ।
मरगद जादर कंचुयउ फुड फुल्लह माला ।
करे कंकण मणि-वलउ चूड़ खलकावइ बाला ।।
रुणुझुणु रुणुझुणु रुणुणए कडि घाघरियाली ।
रिमझिमि रिमझिमि रिमझिमिए पयनेउर जुयली ।।
नहि अलत्तउ वलवलउ से अंसुय किमिसि ।
अंखडियाली रायमइ पिउ जो अ मनरसि ।।[३१]

राजुल चंपककली की भाँति गोरी है, उसके शरीर पर चन्दन का लेप है । सीमंत में सिन्दूर की रेखा खिंची है । नवरंगी कुंकुम का तिलक भाल पर विराजमान है। मोतियों के कुंडल कानों में सुशोभित हैं । मुख कमल पान की लालिमा से रचा है । कंठ में हार पड़ा है । कंचुकी में कसा यौवन और उस पर पड़ी विकसित माला, हाथ में कंकण और खनकती मणि की चूड़ियों में, जैसे आज भी राजुल का विवाहोत्साह फूटा पड़ता है । उसकी घाघरी का `रुणुझुणु` और पायजेब की `रिमझिम` तो आज भी कानों में पड़ रही है । राग से लाल हुई उसकी आँखें, मन में विराजित पति को देख रही हैं ।

हेम विजय सूरि ने भी इस कथानक को ले कर अनेक पदों की रचना की है । विवाह मण्डप में विराजी वधू जिसके आने कीप्रतीक्षा कर रही थी, वह मूक पशुओं के करुण क्रन्दन से प्रभावित हो कर लौट गया । उस समय वधू की अकुलाहट और पति को पा लेने की बेचैनी का जो चित्र उन्होंने खींचा है, दूसरा नहीं खींच सका । राजुल बेचैन हो कर गिरनार की ओर दौड़ उठी । सखियों से कहा कि तुम एक क्षण यहां

३१- जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० १३

ही खड़ी रही, किन्तु सखियों ने उसे पकड़लिया, तो वह निहोरे करके कहने लगी कि तुम `अबही तबही कबही जबही` अर्थात् अब, तब, कब, जब चाहो यदुराय से जा कर कहो, `हे नेमजी, तोरण-द्वार से वापस क्यों लौट आये`। वह पद प्रस्तुत है --

कहि राजमती सुमती सखियान कुं,एक खिनेक खरी रहुरे ।
सखिरी सगिरी अंगुरी मुही बाहि, करति बहुत इसे निहुरे ।।
अबही तबही कबही जब ही, यदुराय कुं जाय इसी कहुरे ।
मुनि हेम के साहिब नेमजी हो, अब तोरन तें तुम्ह क्यूं बहुरे ।।[३१क]

इतने से ही राजुल सन्तुष्ट नहीं हुई, वह लोक-मर्यादा का बन्धन त्यागकर अकेली ही चल पड़ी । वह नेमीश्वर श की पत्नी थी, उसका गन्तव्य स्थान अपना ही पति था इसलिए कुल-कानि का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता । नयी-नयी घटाएं उमड़ रही हैं । इधर-उधर से बिजली चमक रही है , पिउरे-पिउरे कह कर पपीहा बिलला रहा है । उधर तो आसमान से बूंदें टपक रही हैं और इधर `उग्रसेनलली` की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गयी है । वह मुनि हेमविजय के साहब नेमीश्वर को देखने के लिए अकेली ही निकल पड़ी है --

घनघोर घटा उनयी जु नई, इततें उततें चमकी बिजली ।
पिउरे पिउरे पपिहा बिललाति जु, मोर किंगार करंति मिली ।
बिच बिन्दु परे दृग आंसु झरे, दुनि धार अपार इसी निकली ।
मुनि हेम के साहब देखन कुं, उग्रसेन लली सु अकेली चली ।।[३२]

नेमि राजुल के कथा प्रसंग से सम्बन्धित जितना साहित्य उपलब्ध है उसमें भ० रत्नकीरति के पद भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । भ० रत्नकीरति के बहुत से पद नेमि-राजुल के कथा प्रसंग से सम्बद्ध हैं । उनमें से कुछ सुन्दर पद दिये जा रहे हैं । प्रस्तुत पद में राजुल के सौन्दर्य का चित्रण है --

---

३१- हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ० ६

३२- वही

राजुल का विवाह के लिए शृंगार किया गया है। गोरी, सुन्दर राजुल को कंचन वर्ण की कंचुकी पहनायी गयी है। पीत-नील रंग की पटोला साड़ी पहनी है। नेमि कुंवर रथवर के साथ रथ पर बैठ कर आये हैं। राजुल नेह से भरी हुई दुल्हा बने नेमि को देख रही है कि इतने में ही पशुओं को देख कर मान तोड़ नेमि प्रभु शीघ्र ही गिरिनार चले गये --

सुन्दरी सकल सिंगार करे गोरी।
कनक वरन कंचुकी कसी तनि, पेनीले आदि नर पटोरी।
निरखती नेह भरि नेम नौ साहं हुं, रथ बैठे आये संग रथवर जोरी।
रतन कीरति प्रभु निरखि सारंग, वेग दे गिरि गये मान मरोरी ।।[३३]

नेमिनाथ विवाह मंडप से क्यों वापिस चले गये यह राजुल की समझ के बाहर है। वह कहती है -- मेरे नेमि पिया विवाह मंडप से क्यों चले गये, यह कोई नहीं जानता। नेमिनाथ पशुओं की पुकार के बहाने विवाह मंडप से लौट गये। मुझसे रत्ती भर भी भूल नहीं हुई फिर भी पिता और भाई के व्यंग्यात्मक शब्द सुनने को मिले। मैंने अपने हृदय को बहुत रोका लेकिन नेमि पिया उसमें बस गये। मुझे तो ऐसा लगता है कि मुक्ति वधु में रमण करने के लिए ही उन्होंने मुझे त्याग दिया है।

कारण कोउ पिया को न जाने।
मनमोहन मण्डप ते बोहरे, पशु पोकार बहाने।
मो थे भूल पड़ी नहि पलरति, प्रात तात के ताने।
अपने उर की आली बरजी, सजन रहे सब छाने।
आये बहोत दिवाजे राजे, सारंग मय धुनी ताने।
रतनकीरति प्रभु छोरी राजुल, मुगति वधु विरमाने।[३४]

विरह से व्याकुल राजुल को कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वह कहती है

३३-हिन्दी पद संग्रह, पद ११
३४- वही, पद ३

कि मैं क्यों श्रृंगार करूं और क्यों नैनोंमेंकाजल लगाऊं । मैं तो अपने वैरागी पति की वैरागिन दासी बनूंगी । केश नहीं संवारूंगी, मोती से मांग भी नहीं भरूंगी, अब तो तेरे (नेमि प्रभु)गुणों की माला पिरोऊंगी । उसे किसी से बोलना अच्छा नहीं लगता तात मात की बात भी अच्छी नहीं लगती । राजुल विरह में बावली सी हो कर घूमती है, सखी कीबात भी नहीं मानती । जैसे बाण से घिर जाने पर हिरणी चकित हो कर इधर-उधर घूमती है उसी तरह राजुल भी विरह से व्याकुल हो कर घूमती है । राजुल अपने पति से विनती करती है कि इतने कठोर न बनो, कुछ दया करो । मैं तुम्हारे विशाल नेत्रों की बलिहारी जाती हूं । हे प्रभु तुम्हारे बिना राजुल, घर में किस प्रकार रहे,वह तो सदैव उदास रहती है --

कहा थे मंडन करूं कजरा नैन भरूं, होऊं रे वैरागन नेम की चेरी ।
शीश न मंजन देउं, मांग न मोती लेउं, अब पोरहुं तेरे गुननी बेरी ।
काहू सुं बोल्यो न भावे, जीया में जु ऐसी आवे नहीं गमे तात मात न मेरी ।
आली को कह्यो न करे,बावरी सी होइ फिरे, चकित कुरंगिनी युं सर घेरी ।
निठुर न होइ ए लाल, बलिहुं नैन विशाल,कैसें री तसदयाल भले भलेरी ।[३५]
रतनकीरति प्रभु तुम्ह बिना राजुल, यों उदास गृहे क्युं रहेरी ।

राजुल कहती है कि मेरे निष्ठुर नेत्र अब मेरा कहना नहीं मानते । मेरे मना करने पर भी वे नेमि प्रभु के गुण याद कर-करके सजल हो जाते हैंऔर बादलों की तरह बरसने लगते हैं ।वे मेरे ज्ञान को ठुकरा कर बरसने लगते हैं ।वे अत्यन्त चंचल हैं । मेरे द्वारा विनती करने पर भी वे नहीं मानते , अपनी चपलता नहीं छोड़ते । नित्य ही मेरे नेत्र पति के मार्ग पर लगे रहना चाहते हैं अर्थात् नेमि प्रभु के दर्शन पाना चाहते हैं । चकोर जिस प्रकार चन्द्रमा को चाहता है उसी प्रकार मेरे नेत्र स्वामी के दर्शन चाहते हैं । मुझे तन, मन, धन तथा यौवन कुछ भी नहीं सुहाता । रात-दिन भी मुझे रुचिकर नहीं लगते । हे प्रभु तुम अब शीघ्र ही मुझे दर्शन दो --

वरज्यो न माने नयन निठोर ।

३५- हिन्दी पद संग्रह, पद ८

सुमिरि सुमिरि गुन भये सजल घन, उमगी चले मति फोर ।
चंचल चपल रहत नहीं रोके, न मानत तु निहोर ।
नित उठि चाहत गिरि को मारग, जेहिं विधि चंद-चकोर ।
तन मन धन यौवन नहीं भावत, रजनी न भावत मोर ।
रतनकीरति प्रभु वेगें मिली, तुम मेरे नयन के चोर ।[३६]

राजुल अपनी सखी से अपनी मनोदशा व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखि नेमि ने मेरी पीड़ा को नहीं समझा । बहुत से राजा महाराजाओं के साथ वे बलराम से वीर के साथ मेरे घर आये । नेमि के सुन्दर मुख को देखकर मेरा मन हर्षित हुआ । तथा मुझे धैर्य की अनुभूति हुई । वह नेमि पिया पशुओं की पुकार सुन कर सब कुछ त्याग कर गिरिनार पर्वत पर चले गये । मैं उन्हें पुकारती ही रही, मैंने सारा शृंगार छोड़ दिया, हार तोड़ दिया परन्तु वे चले गये । प्रभु ने वैराग्य धारण कर लिया और मेरे हृदय को निर्जीव कर दिया --

सखी री नेम न जानी पीर ।
बहोत दिवाजे आये मेरे घरि, संग लेर हलधर वीर ।
नेम मुख निरखी हरषीयन हुं, अब तो होइ मन धीर ।
तामें पशुय पुकार सुनि करि, गयो गिरिवर के तीर ।
चन्द्रवदनी पोकारती डारती, मंडन हार उर चीर ।
रतनकीरति प्रभु भये वैरागी, राजुल चित कियो थीर ।।[३७]

विरहणी राजुल अपनी सखी से कहती है -- हे सखि सावन की घटा मुझे सता रही है, इससे मेरी विरह व्यथा और भी बढ़ गयी है । रिमझिम-रिम-झिम बूंदें पड़ रही हैं किन्तु मुझे नेमि के बिना कुछ भी नहीं सुहाता । सुआ (तोता) मधुर ध्वनि से कूंजता है, कोयल भी मीठे स्वर में गाती है और पपीहा भी मधुर ध्वनि

३६- हिन्दी पद संग्रह, पद ७
३७- वही, पद ४

मैं बोलता है किन्तु मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता । दादुर, मोर बोल रहे हैं, बादल गरज रहे हैं तथा इन्द्र धनुष भी मुझे भयभीत कर रहा है । मैं एक गुप्त पत्र लिख रही हूं, इसे कौन नेमि पिया को सुनाये । राजुल कहती है कि हे प्रभु तुम कितने कठोर हो गये । तुमने अपने वचनों का पालन नहीं किया --

सखि री सावनि घटा ई सतावे ।
रिमि फिमि बूंद बदरिया बरसत, नेमि नेरे नहिं आवे ।
कूंजत कीर कोकिला बोलत, पपीया बचन न भावे ।
दादुर मोर घोर घन गरजत, इन्द्र-धनुष डरावे ।
लेख लिख री गुपति वचन को, जदुपति कु जु सुनावे ।
रतनकीरति प्रभु अब निठोर भयो, अपनो वचन बिसरावे ।[३८]

नेमि के विरह में राजुल की दशा शोचनीय हो गयी है, अब वह उन्हें देखे बिना जीवित नहीं रह सकती । वह अपनी व्यथा व्यक्त करती हुई प्रार्थना करती है -- हे नेमि तुम एक घड़ी के लिये ही आ जाओ । एक रात रह कर प्रातःकाल चाहे तुम वैराग्य धारण कर लेना । हे समुद्रविजय नन्दन नेमिराजा तुम्हारे बिना कामदेव मुझे जला रहा है । शीतल चन्दन और सुन्दर चन्द्रमा मेरे अंगों को जला रहा है । हे नेमि प्रभु तुम मुझे रोते, बिलखते छोड़ कर गिरनार पर्वत पर कैसे चले गये । तुम तो तप करके मुक्त हो जाओगे, मेरा क्या होगा --

नेम तुम आओ धरिय घरे ।
एक रयनि रही प्रात पियारे, बोहोरी चारित धरे ।
समुद्र विजय नन्दन नृप तुंही बिन, मनमथ मोही मरे ।
चंदन नीर चारु इन्दु से, दाहत अंग धरे ।
बिलखती छारि चले मन मोहन, उज्जल गिरि जा चरे ।
रतनकीरति कहे स मुगति सिधारे, अपनो काज करे ।।[३९]

३८- हिन्दी पद संग्रह, पद ६

३९- वही, पद १४

राजुल सखि से कहती है कि मुझे नरेन्द्र नेमि से कौन मिलायेगा। मैं कैसे उनसे मिल पाऊंगी। उनके बिना मेरा तन, मन तथा यौवन धूल के समान है। शीतल चन्दन और चन्द्रमा भी जलन पहुंचाते हैं। घर जंगल के समान लगता है, कामदेव का फंदा मेरे लिये असहनीय है। तात, मात, सखी तथा सुन्दर रात्रि सब मेरे लिये दुःखदायक हैं। हे नेमि प्रभु तुम तो शंकर (कल्याणकारी) हो, सुख प्रदान करने वाले हो, तुमने कर्मों का नाश कर दिया है। तुम परम दयालु हो, इन्द्र भी तुम्हारी पूजा करते हैं, मुझ पर भी दया करो --

सखि को मिलावो नेम नरिंदा।
ता बिन तन मन यौवन रजत है, चारु चंदन अरु चंदा।
कानन भुवन मेरे जीया लागत, दुसह मदन को फंदा।
तात मात अरु सजनी रजनी, वेऋति दुःख को कंदा।
तुम तो संकर सुख के दाता, करम काट किये मंदा।
रतनकीरति प्रभु परम दयालु, सेवत अमर नरिंदा॥[४०]

जगतराम ने भी नेमि-राजुल के प्रसंग को ले कर अनेक पदों की रचना की है। यहां उनका एक पद प्रस्तुत है --

राजुल तपस्वी नेमि प्रभु के गुणों पर मुग्ध हो गयी है। वह भी अपने पति के साथ तपस्विनी बन कर तप करना चाहती है। वह अपनी सखी से कहती है -- हे सखि मुझे किसी प्रकार प्रभु के दर्शन करा दो, उन्हें देखे बिना अब नहीं रहा जाता। प्रभु की सांवली, सलोनी सुन्दर छवि को देखने के लिये मेरे ये नेत्र व्याकुल हैं। प्रभु ने अपने सुकोमल शरीर से मदन (कामदेव) को मार दिया है। उनसे मोह भी भयभीत है। मैं नेमिनाथ प्रभु के साथ तपस्या करूंगी। अब मेरी और कुछ भी इच्छा नहीं है --

कहु सखी री बिन देखे रह्यो न जाय।
ये री मोहि प्रभु को दरस कराय।
सुन्दर स्याम सलोनी मूरति, नैन रहे निरखत ललचाय।

४०- हिन्दी पद संग्रह, पद ५

तन सुकमाल मार जिह मार्यौ, तासौ मोह रह्यौ थरराय ।
जग प्रभु नेमि संग तप करनी, अब मोहि और न कछु सुहाय ।।[४१]

धानतराय ने भी नेमि-राजुल के प्रसंग को लेकर अनेक पदों की रचना की है। राजुल नेमि के विरह में व्याकुल है। वह सखियों से नेमि की सुध लाने की प्रार्थना करती है। उसे अपना शृंगार निरर्थक लगने लगता है। उसके पति ने वैराग्य धारण किया है वह भी वैरागिन बनेगी तथा पति से अपना उद्धार करने की प्रार्थना करेगी। इस प्रकार राजुल की विभिन्न मनःस्थितियों का वर्णन कवि ने अपने अनेक पदों में किया है।

राजुल सखि से कहती है कि हे सखि तुमने कहीं पर नेमिकुमार को देखा है। वह नेमिकुमार बहुत से दल-बल के साथ रथ पर बैठकर मुझसे विवाह रचाने के लिए आया था। इन्द्र के समान उसके दास थे, उसकी शोभा की कोई सीमा ही न थी। नारायण ने अनेक पशुओं को भोज के लिये बाड़े में बांधा। उनके रुदन से नेमि के हृदय में करुणा का संचार हुआ। उन्होंने पशुओं को बन्धन मुक्त किया। वे स्वयं भी वस्त्राभूषण त्याग कर पांच महाव्रतों को धारण करके यहां से चले गये। वे कहां चले गये, मुझे ज़रा बताओ। जो नेमि की सुध लाये और मुझे उनसे मिलाये, वही मेरा सबसे अधिक प्रियपात्र है। एक बार उन्हें देख भर लूं, मैं वही करूंगी जो वे कहेंगे --

कहुं दीठा नेमिकुमार ।
व्याहन आया बहु दल लाया रथ ऊपर असवार ।
इन्द्र सरीखे चाकर जाके शोभा वार न पार ।
नारायन अतिकूर कमाया घेरे जीव अपार ।
शोर जु कीने करुना भीने दीने बंध निवार ।
पट भूषन बहुभार डारके पंच महाव्रत धार ।
गये कहां कछु सुधि हू पाई मोह कहो इह बार ।

४१- हिन्दी पद संग्रह, पद १२६

जो सुध लावै मोह मिलावै सोई पीतम सार ।
थानत कहे करोंगी सोई देखौं नैन निहार ।।[४२]

राजुल व्याकुल हो कर सखी से पूछती है -- तुने कहीं पर नेमिकुमार को देखा है ? वे नेमि, जो पशुओं को बंधनमुक्त करने वाले हैं, मेरे प्राणों के आधार हैं। उन्होंने वैराग्य धारण किया है। वे बाल ब्रह्मचारी हैं, अनेक गुणों से शोभित हैं तथा उन्होंने 'मुक्ति' से प्रेम किया है। वह दिन, वह समय धन्य होगा जब मैं उनके दर्शन पाऊंगी।

तैं कहुं देखे नेमिकुमार ।
पशुन बंध छुडावनिहारे मेरे प्रान अधार
बालब्रह्मचारी गुनधारी कियो मुकतिसों प्यार ।
थानत कब मैं दरसन पाऊं धन्य दिवस धनि वार ।[४३]

राजुल सखी से नेमि से मिलाने की इच्छा व्यक्त करती है, "हे सखि मुझे नेमिजी से मिला दो। वे मुझसे विवाह करने के लिए आये फिर कहां चले गये, इस बात का पता लगाओ। चन्दन, इत्र और अरगजा शरीर में मत लगाओ। मेरे प्राण तो प्रिय में बसे हैं, उन्हीं प्राणनाथ का मुझे दर्शन करा दो।

एरी सखी । नेमिजी को मोहि मिलावो ।
व्याहन आये फिर कित धाये ढूंढि खबर किन लावो ।
चोवा चन्दन अतर अरगजा काहेको देह लगावो ।
थानत प्रान बसैं पियके ढिग प्रानके नाथ दिखावो ।।[४४]

राजुल कहती है कि मैं क्या करूं । कहां जाऊं । मेरे नेमि पिया वन को

४२- थानत पद संग्रह, पद ५४
४३- वही, पद १४६
४४- वही, पद ४०

चले गये । मैंने न मालूम क्या गलती की कि प्रभु मुझसे विमुख हो गये । अब मैं उनके पास जा कर, हाथ जोड़ कर उनसे विनती करूंगी कि मुझे भी इस भव समुद्र से पार लगा दें--

कहा री ! करौं कित जाउं, सखी मैं नेमि गये वन ओरै री ।
कहा चूक प्रभुसों मैं कीनीं जो पीउ मोह न लोरै री ।।
अब वहां जैहौं विनती करिहौं सनमुख ह्वै कर जोरै री ।
द्यानत हमैं तारल्यौ स्वामी लेहुं बलाइ किरोरै री ।।[45]

राजुल के मन में पति से मिलने की तीव्र उत्कंठा है । उसे घर, आंगन तथा अन्य सभी पदार्थ क्षण भर के लिये भी नहीं रुचते । धन, यौवन भी उसके लिए निरर्थक हैं ।उसे अब प्रभु से सम्बन्धित बातों मेंही रुचि रह गयी है ।वह भी अब विरक्त होना चाहती है । अपने वैरागी प्रभु का दर्शन करके अपने भव-आताप (भव-भ्रमण जन्य दाह) को मिटाना चाहती है । इन्हीं भावों को इस पद में सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है --

सुनरी ! सखी जहां नेम गये तहां मोकई ले पहुंचावो री-हां ।
घर आंगन न सुहाय छिनक मुझ अब ही पीव मिलावो री-हां ।
धन जोवन मेरे काम न ऐहै प्रभु की बात सुनावो री-हां ।
द्यानत दरस दिखाय स्वामिको भवआताप बुझावो री-हां ।।[46]

राजुल सखि से कहती है हे सखि! चलो वहां चलें जहां नवीन व्रतधारी नेमि विराजमान हैं । वहां चल कर प्रभु से विनती करके कहें कि किस औगुन के कारण उसे बिसार दिया है ।

राजुल स्वत: ही इसका उत्तर देती हुई कहती है कि अब मैं समझ गयी । इन्होंने 'मुक्ति' से यारी करली है । उस वनिता के ऊपर तन मन निछावर हैं ।

४५- द्यानत पद संग्रह, पद ५७

४६- वही, पद २६८

हाँ चल री, सखी जहां आप विराजत नेमि नवल व्रतधारी री ।
जाय कहें प्रभुसौं विनती करि किहिं औगुन जु विसारी री ।
रजमति कहत बात मैं जानी करी मुक्तसौं यारी री ।
द्यानत ता वनिता के ऊपर तन मन वारौं हारी री ।।[४७]

राजुल सखी से अपने वैरागी पतिको मनाने की विधि पूछती है -- हे सखि पिया ने वैराग्य धारण किया है, मैं उन्हें किस प्रकार मनाऊं ? वे मेरे हृदय में घर धारण रखते हैं किन्तु उनके मन में मेरे प्रति प्रेम नहीं है। अब कैसे कार्य बने । हे सखि सुन , मेरे सारे शृंगार को उतार दे, उनके बिना मुझे कुछ भी नहीं सुहाता । जिस विधि से मेरे पिया मुझसे प्रसन्न हो जाये वही विधि मुझे बता दे --

पिय वैराग्य लियो है किस मिस लेहुं मनाई ।
मो मन वे उन मनमें मैं ना काज होय क्यों माई ।।
सब सिंगार उतार सखी री तिन बिन कछु न सुहाई ।
द्यानत जा विधि तैं वर रीझैं सो विधि मोहि बताई ।।[४८]

राजुल अपने नेमि पिया से मिलना चाहतीहै लेकिन उसके पिया तो वैरागी हैं और वह शृंगारी है इसलिए उनसे कैसे मिल सकतीहै । दोनों के गुण विरोधी हैं । राजुल का नेमि से मिलना, उनके दर्शन करना, आकाश को मुट्ठी में समाने जैसा है । कहीं आकाश मुट्ठी में आ सकता है ? ऐसे ही वह भी प्रभु के दर्शन नहीं पा सकती । राजुल अब शृंगारी वेश को त्याग कर वैरागिन हो जायेगी तभी शायद यह सम्भव हो सके कि नेमि प्रभु उस पर कृपा करें । राजुल के इन्हीं भावों की अभिव्यंजना प्रस्तुत पद में है--

पिय वैराग्य लियो है किस मिस देखन जाऊं ।
व्याहन आये पशु छुटकाये तजि रथ जन गुर गाऊं ।।

४७- द्यानत पद संग्रह, पद ३१६
४८- वही, पद १६२

मैं सिंगारी वे अविकारी क्यों नम मुठिय समाऊं ।
आनत जोगिनि ह्वै विरमाऊं कृपा करें निज ठाऊं ।। ४९

प्रिय मुझे अकारण छोड़ गये, इस दु:ख को कैसे भरूंगी । मुझसे जरा भी मोह नहीं किया । जा कर उनके पैरों पड़ूंगी । अन्यत्र मुझे दोष लगेगा । मैं तो प्रीतम का साथ करूंगी । वे जब कृपा करेंगे तभी संसार-समुद्र से तरूंगी ।

तजि जो गये पिय मोह अनाहक यह दुख कैसें भरिहौं री ।
मोसौं मोह रंच नहिं कीनौं मैं जा पायनि परिहौं री ।
और ठौर मोहि दोष लगैगो पीतम को संग करिहौं री ।
आनत कृपा करैं स्वामी जब तब भवसागर तरिहौं री ।। ५०

मुधरदास जी के बहुत से पद नेमि-राजुल कथा-प्रसंग पर आधारित हैं । इनके पदों में सर्वत्र प्रेम की पवित्रता के दर्शन होते हैं । राजुल के विरह को सखियों से निवेदित कराया गया है । इस विरह वर्णन में कहीं भी 'ऊहा' के दर्शन नहीं होते। तथा वासना की गंध भी नहीं मिलती । राजुल के अन्त:स्थ विरह को मुधरदास ने सहज स्वाभाविक ढंग से व्यक्त किया है । हृदयगत भावों के उतार-चढाव का ऐसा सजीव चित्रण किया गया है कि पाठकों का मन द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता । प्रस्तुत पदों पर दृष्टिपात करने से यह बात स्वत: सिद्ध हो जायेगी ।

राजुल अपनी सखी से पूछती है कि हे सखि ! क्या तुमने कहीं पर नेमि-कुमार को देखा है । नेत्रों को प्यारा लगने वाला हमारा स्वामी हमारे प्राणों का आधार है । पिया के वियोग से मैंने बहुत व्यथा झेली है तथा पिया के वियोग में हल्दी की तरह पीली हो गयी हूं । अब तो अपने श्यामल वर्ण वाले सुन्दर पिया से मिल करके ही हरी हो सकती हूं । विरह की नदी में मेरा हृदय बहा जा रहा है, मैं बिना किसी आधार के उसमें डूब रही हूं । अब प्रीतम रूपी केवट के बिना मुझे पार न लगाने में कोई भी समर्थ नहीं है।

४९- आनत पद संग्रह, पद १६१
५०- वही, पद १२८

देख्यो री । कहीं नेमिकुमार ।
नैननि प्यारो नाथ हमारो प्रानजीवन प्रानन आधार ।
पीव वियोग विथा बहु पीरो पीरो भई हलदी उनहार ।
होउं हरी तब ही जब भेटों श्यामवरन सुन्दर भरतार ।
विरह नदी असराल बहै उर बूढ़त हौं वामें निरधार ।[५१]
भूधर प्रभु पिय खेवटिया बिन समरथ कौन उतारनहार ।।

राजुल नेमि के विरह में अत्यधिक व्याकुल है। उसका एक-एक पल एक-एक पहर के समान बीत रहा है। वह अनेक प्रकार से नेमि को समझाती है तथा विवाह करने का आग्रह करती है। वह तीर्थंकर ऋषभदेव का उदाहरण भी उनके सामने रखती है कि जिस प्रकार उन्होंने पहले भोग भोग कर बाद में संयम धारण किया उसी प्रकार वे भी करें। राजुल के इन्हीं मर्मस्पर्शी भावों को इस पद में अभिव्यक्ति हुई है।

राजुल कहती है, "हे वनवासी पिया तुमने मुझे क्यों त्याग दिया। तुम तो सब जीवों का कल्याण करने वाले हो तथा परम दयालु हो। मैंने ऐसी क्या भूल की जो तुम मेरे प्रति इतने कठोर हो गये। तुम्हारे बिना मेरा एक-एक पल एक-एक पहर के समान बीत रहा है। मैं किस प्रकार अपने रात-दिन बिताऊं? चकई तो प्रातःकाल पिया के मिलन की आशा से सारी रात विलाप करके बिता देती है किन्तु मेरे लिए तो कोई भी आशा, कोई भी आधार नहीं है। हे निर्मोही मैं कैसे जीवित रहूं? जरा अपने हृदय में विचार तो करो अभी तो तुम्हारी अवस्था भोग भोगने की है, अभी वैराग्य क्यों धारण कर लिया। पहले आदिनाथ ने भी कच्छ तथा सुकच्छ राजा की कुमारियों से विवाह किया। हे पिया तुम भी उसी मार्ग को अपनाओ तथा भोग के बाद संयम धारण करो। मैं विरह की नदी में डूब रही हूं, मुझे पार लगाओ --

अहो वनवासी पीया तुम क्यों छारी अरज करे राजुल नारी ।

५१- भूधर विलास, पद १४

तुम तौ परम दयाल सबन के सबहिन के हितकारी ।
मो पै कठिन भये क्यों सजना कहीये चूक हमारी ।
तुम विन एक पलक पीया मेरे जाय पहर सम भारी ।
क्यों करि निस दिन भर नेम जी तुम तौ ममता डारी ।
जैसे रैनि वियोगज चकई तौ विलपै निस सारी ।
आसि बांधि अपनी जिय राखे प्रात मिलयौं या प्यारा ।
मैं निरास निरधार निरमोही जिउ किम दुख्यारी ।
अब ही भोग जोग हो बालम देखो चित विचारी ।
आगे रिषभ देव भी व्याही कच्छ सुकच्छ कुमारी ।
सोही पंथ गहौ पीया पाछै होज्यो संजमधारी ।
जैसे विरहै नदी में व्याकुल उग्रसैन की वारी ।
धनि धनि समदबिजै के नंदन बूडत पार उतारी ।
सो ही किरपा करौ हम ऊपरि भूधर सरण तिहारी ।। [५२]

राजुल अपनी सखी से कहती है, "हे सखि मुझे वहां ले चल जहां प्यारे जादौपति रहते हैं। नेमि रूपी चन्द्रमा के बिना यह चन्द्रमा मेरे सारे शरीर और मन को जला रहा है। चन्द्रमा की किरणें नाविक के तीर की भांति अग्नि के स्फुलिंगों को बरसा रही हैं। रात्रि के तारे तो अंगारे ही हैं। इस प्रकार मैं विरहाग्नि में व्याकुल हो कर जल रही हूं --

तहां ले चल री जहां जादौपति प्यारो ।
नेमि निशाकर बिन यह चन्दा तन मन दहत सकल री ।
किरन किधौं नाविक-शरतति कैं ज्यों पावक की झलरी ।
तारे हैं अंगारे सजनी रजनी राकसदल री ।
इह विधि राजुल राजकुमारी विरह तपी बेकल री ।
भूधर धन्न शिवासुत बादर बरसायो समजल री ।। [५३]

५२- जैन पद संग्रह, भाग ३, पद २८
५३- भूधर विलास, पद ४५

राजुल अपनी मां से कहती है कि हे मां, अब देर न करो। मुझे शीघ्र ही वहां भेज दो जहां मेरा प्यारा पति रहता है। मुझे अब सब जगह अन्धेरा ही अन्धेरा दिखाई देता है। न जाने नेमि रूपी दिवाकर का प्रकाश्यमान मुख कब देखने को मिलेगा। उनको देखे बिना मेरा मन रूपी कमल मुरझा गया है। मैं उनके साथ इसी प्रकार रहूंगी जैसे शरीर के साथ छाया, भले ही वे मुझे त्याग दें। उन्होंने बिना किसी अपराध के ही मुझे दण्ड दिया है, मैं क्या कर सकती हूं। लेकिन राग भाव के उदय के कारण ही मैंने विरह के भारी दुःख को सहा। यह अज्ञान के कारण ही हुआ। अब ज्ञान रूपी सूर्य के प्रभाव से मेरा मोह रूपी महान अन्धकार नष्ट हो गया है। यह संसार अस्थिर है, झूठा है। अब मैंने इस तथ्य को जान लिया है तथा पति के मार्ग को अपना लिया है, इसी से मेरा प्रेम सार्थक होगा।

मा विलंब न लाव पठाव तहां ही जहं जगपति पिय प्यारो।
और न मोहि सुहाय कछु अब दीसे जगह अंधारो।
मैं श्री नेमि दिवाकर को कब देखों बदन उजारो।
बिन देखें मुरझाय रह्यो है उर अरविन्द हमारो।
तन छाया ज्यों संग रहौंगी वे छांड़हिं तो छांरो।
बिन अपराध दण्ड मोहि दीनों कहा चले मेरो चारो।
इहि विधि रागउदय राजुलने सह्यो विरह दुःख भारो।
पीछें ज्ञानभान कर विनश्यो मोह महातम कारो।
पिय के पैंड़े पैंड़ो कीनों देखि अथिर जग सारो।
मुधर के प्रभु नेमि पियासौं पाल्यों नेह करारो॥ ५४

विरहणी राजुल का हृदय विरहाग्नि से जल रहा है। वह अपनी व्यथा सखि से व्यक्त करती हुई कहती है -- हे सखि नेमिकुमार के बिना मेरा हृदय अब नहीं रहता। हे सखि देख मेरा हृदय कैसा तप रहा है। तू अपने हाथ से छू कर क्यों नहीं देखती। शीतल कपूर और कमल दल मेरे विरहाग्नि से तपते हृदय को शीतलता नहीं

५४-मुधरविलास, पद १३

पहुंचा सकते, तू इन्हें दूर कर दे । मुझे तो शीतल चन्द्रमा भी कष्टकर लगता है । नेमि पिया के बिना मेरा हृदय शीतल नहीं हो सकता ।

नेमि बिना न रहै मेरो जियरा ।
हेर री हेली तपत उर कैसो लावत क्यों निज हाथ न नियरा ।
करि करि दूर कपूर कमल दल लगत करूर कलाधर सियरा ।
भूधर के प्रभु नेमि पिया बिन शीतल होय न राजुल हियरा ।।[५५]

विवाह

दाम्पत्य-भाव की अभिव्यक्ति के लिए जैन कवियों ने विवाह के रूपकों की स्वतन्त्र रूप में रचना की है । इनको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है --

(१) एक तो वह जब कोई साधु दीक्षा लेता है तब उसके इस प्रसंग को दीक्षा कुमारी या संयमश्री के साथ विवाह के रूपक में प्रस्तुत किया जाता है ।

(२) दूसरे वह जब आत्मा रूपी नायक के साथ उसी के किसी गुण रूपी कुमारी की गांठें जुड़ती हैं ।

जैन कवियों ने उक्त प्रकार के रूपकों को `विवाहला`, विवाहलउ, विवाहलो आदि नाम दिये हैं ।

मेरुनन्दन उपाध्याय[५६] का `जिनोदयसूरि विवाहलउ`, उपाध्याय जयसागर का `नेमिनाथ विवाहलो`, कुमुदचन्द्र का `ऋषभ विवाहला` तथा अजयराज पाटणी का `शिवरमणी विवाह` इस विधा की उत्कृष्ट कृतियां हैं ।

पदों में भी विवाह का रूपक प्रस्तुत करने के उदाहरण उपलब्ध होते हैं ।

बुधजन ने `शिव बनरी` और `मुनि बना` के विवाह का एक सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है -- मुनि `बना` बन कर आये हैं । वे `शिव बनरी` से ब्याह के लिए उमगे हैं । उन्हें देखकर भव्यजन मोहित हो रहे हैं । उन्होंने सिर पर रत्नत्रय का सेहरा

५५- भूधरविलास, पद २०

५६- जैन भक्ति काव्य और कवि

बांधा हुआ है। संवर के सुन्दर वस्त्र पहने हैं। द्वादश भावना और दशधर्म बराती बन कर साथ में हैं। सुमति नारि मिल कर `अजपा` मंगल गीत गा रही हैं। राग-द्वेष की आतिशबाजी छूट रही है। द्विविध कर्म का दान बंट रहा है। लोक जन सन्तुष्ट हो रहे हैं। शुक्लध्यान की अग्नि जला कर उसमें कर्मों को होमा जा रहा है। इस तरह शुभवेला में मुनि ने शिवबनरी का वरण किया। यह अनुभुत हर्ष की बात है। निज मन्दिर में निश्चल हो कर शोभित हो रहे हैं --

मुनि बन आये बना।
शिव बनरी व्याहनकों उमगे मोहित भविक जना।
रतनत्रय सिर सेहरा बांधे सजि संवर बसना।
संग बराती द्वादश भावन अरु दशधर्म पना।
सुमति नारी मिलि मंगल गावत अजपा गीत घना।
राग दोष की आतिशबाजी छूटत आनि कना।
दुविधि कर्म का दान बटत है तोषित लोकमना।
शुकल ध्यान की आनि जला करि होमें कर्मघना।
शुभ बेल्यां शिव बनरि बरी मुनि अदभुत हरष बना।[५७]
निज मन्दिर में निश्चल राजत बुधजन त्याग धना।।

बनारसीदास ने तीर्थंकर शान्तिनाथ का शिवरमणी से विवाह दिखाया है। शान्तिनाथ विवाह मंडप में आने वाले हैं। होने वाली वधू कीउत्सुकता दबाये नहीं दबती। वह अभी से उनको अपना पति मान बैठी है।वह अपनी सखी से कह उठती है,"हे सखी आज का दिन अत्यधिक मनोहर है। किन्तु मेरा मनभाया अभी तक नहीं आया। वह मेरा पति सुख-कन्द है, और चन्द्र के समान देह को धारण करने वाला है, तभी तो मेरा मन-उदधि आनन्द से आन्दोलित हो उठा है। और इसी कारण मेरे नेत्र-चकोर सुख का अनुभव कर रहे हैं। उसकी सुहावनी ज्योति की कीर्ति संसार में फैली हुई है। वह दुखरूपी अन्धकार के समूह को नष्ट करने वाली है।

५७- बुधजन विलास, पद ११६

उनकी वाणी से अमृत झरता है। मेरा सौभाग्य है जो मुझे ऐसे पति प्राप्त हुए हैं-- "सहि एरी। दिन आज सुहाया मुझ पाया आया नहीं घरे।"

दाम्पत्य भाव की अभिव्यक्ति के लिए जैन कवियों ने पदों के अतिरिक्त अन्य कई विधाओं में काव्य रचना की है। उनमें संयोग और वियोग दोनों भावों को व्यक्त किया गया है। ऐसी रचनाओं में विवाहला या विवाहलो, बारहमासा, रास, झूलड़ी आदि प्रमुख हैं। पदों की अपेक्षा रचना के विस्तार का सौकर्य होने के कारण इन रचनाओं में भावों को अभिव्यंजित करने में कृतिकारों को विशेष सफलता मिली है। डा० प्रेमसागर जैन ने विभिन्न कवियोंकी ऐसी अनेक रचनाओं का परिचय दिया है।[५८]

उपर्युक्त अनुशीलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैन परम्परा के कृतिकारों को दाम्पत्य भाव के विवेचन में कोई परहेज़ नहीं रहा। उन्होंने संयोग और विरह दोनों का सरस वर्णन किया है फिर भी अन्य रचनाकारों की अपेक्षा जैन कृतिकार के लेखन और अभिव्यक्ति में मौलिक भिन्नता और विशेषता है। वहां रचनाकार काव्य रचना के उद्देश्य के सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट है और रचना करते समय सतत जागरूक भी।

जिनसेन ने लिखा है वही कवि हैं और वही विचक्षण हैं जिनकी भारती धर्मकथा का अंग बनती है। जो कविता धर्मानुबन्धिनी है वही प्रशस्य है शेष सुप्रयुक्त होने पर भी पापास्रव के लिए ही होती है --

त एव कवयो लोके त एव विचक्षणाः।
येषां धर्मकथांगत्वं भारती प्रतिपद्यते ॥
धर्मानुबन्धिनी या स्यात् कविता सैव शस्यते।
शेषा पापास्रवायैव सुप्रयुक्तापि जायते॥

५८- डा० प्रेमसागर जैन, हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि।

हिन्दी के जैन कवि और अधिक मुखरता के साथ इस बात को कहते हैं। भूधरदास कहते हैं कि हे विधाता तुमसे एक बड़ी भूल हो गयी जो विचारे हरिण की नाभि में कस्तूरी पैदा की। वे तो दांतों में तृण दबाये रहते हैं। तुम्हें उन पर करुणा नहीं आयी। उनकी जीभ में क्यों न पैदा की जो दूसरों को दुःख देने वाले रस काव्य की रचना करते हैं। उनकी जीभ में बनाते तो लोग कस्तूरी के लिए उन्हीं की जीभ काटते इस तरह 'साधु अनुग्रह' और 'दुर्जन दंड' दोनों सध जाते।

राग के उदय से जग वैसे ही अंधा हो रहा है। किसी को लाज नहीं आती। बिना सिखाये ही विषय सेवन की सुघड़ता सीख रहे हैं। इस पर भी रस काव्य करते हैं। इसे अन्धे, अबूझ जनों की आंखों में धूल फोंकना ही कहा जायेगा।

यह विधि भूल भयी तुमसे तुमने जो कहां कस्तूरी बनाई।
दीन कुरंगनि के तन में तृण दंत धरैं करुना नहीं आई।
क्यों न करी उन जीभन में रस काव्य करें पर को दुखदाई।
साधु अनुग्रह दुर्जन दंड दोउ सधते बिसरी चतुराई।।

राग उदै जग अंध भयो सहजैं सब लोगन लाज गवाई।
सीख बिना सब सीखत हैं विषयान के सेवन की सुघराई।।
तापर और रचैं रस काव्य कहा कहिए तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझन की अंखियान में फोंकत हैं रज राम दुहाई।।[५८]

बनारसीदास ने ऐसे कवियों की भर्त्सना की है जो अश्लील काव्य रचकर अपने को धन्य मानते हैं और गर्वोन्मत्त हो कर कहते हैं कि हमें 'शारदा का वर' प्राप्त है--

मांस की गरंथि कुच कंचन-कलस कहैं,
कहैं मुख-चंद जो सलेषमा को घर है।
हाण के दसन आहि हीरा-मोति कहैं ताहि,
मांस के अधर ओंठ कहैं बिंब फल है।।

५८- जैन शतक

हाड़ दंड भुजा कहैं कौल-नाल काम जुगा ,
हाड़ ही के थंभा जंघा कहैं रंभा तरु है ।
यौं ही झूठी जुगति बनावैं और कहावैं कवि ,
ऐसे पर कहैं हमें सारदा को वरु है ।।[६०]

चेतन और सुमति का रूपक भक्ति के क्षेत्र में जैन कवियों की एक अद्भुत देन है । सुमति या सम्यग्दृष्टि चेतन या आत्मा का अपना गुण है । ज्ञानावरण कर्म और दर्शन मोहनीय कर्म के कारण उसकी यह सद् दृष्टि आवृत रहती है । सद्-दृष्टि के अभाव में उसकी मति कुमति है और उसी के कारण वह खोटी प्रवृत्तियों में रचता-पचता रहता है । सद्दृष्टि का उद्घाटन पिया के 'घूंघट के पट खोलने' जैसा है । चेतन का सुमति को प्राप्त होना ही उसका अपनी प्रेयसी के पास अपने घर लौटना है । उसके बाद तो 'पिय' और 'तिय' का ऐसा मेल होता है कि जैसे बूंद दरिया में समा जाये ।

चेतन और सुमति के संयोग और वियोग दोनों प्रकार के रूपकों को कवियों ने बड़ी कुशलता और सात्विकता के साथ व्यक्त किया है । होली के सांग-रूपक तो और भी अद्भुत हैं ।

नेमि-राजुल का प्रसंग स्पष्टत: लौकिक है फिर भी उसमें पूर्ण सात्विकता और मर्यादा है । राजुल विरहिणी तो है पर वह प्रोषितपतिका नहीं है । उसका प्रियतम न तो कालिदास के यक्ष की तरह अभिशप्त हो कर दूर देश गया है और न अन्य किसी लौकिक प्रयोजन की सिद्धि के लिए । वह तो वैरागी होकर, संसार के बन्धन से 'मुक्ति' के लिए तपश्चर्या करने गया है । ऐसी तपस्या करने जो जनम-मरण राग-विराग के दु:खों को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म कर दे । इसीलिए राजुल अन्तत: यही निश्चय करती है कि वह भी नेमि पिया की तरह जोग धारण करके तपस्या करेगी और राग जन्य दु:ख से हमेशा के लिए मुक्त होगी ।

६०- कविवर बनारसीदास, पृ० १२

नेमि-राजुल का प्रेम सांसारिकता से ऊपर उठ कर अध्यात्म के जिस उन्नत शिखर को छूता है, वही जैन साधना का चरम लक्ष्य है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन कवियों के काव्य में दाम्पत्य भाव अभिव्यक्ति में हिन्दी की अन्य सभी परम्पराओं से ल मौलिक भिन्नता है । न तो वहाँ भक्त सूफी सन्तों की तरह प्रेमिका है न कबीर की बहुरिया और न सूर की राधिका।

संयोग में न तो जैन कवियों की नायिका संभोग के लिए सेज सजाती है और न वियोग में 'पेण्डुलम्' बनी फिरती है । कवि दोनों ही स्थितियों की अभिव्यंजना में सात्विकता बनाये रखने के लिए पूरी तरह सावधान है ।पदों में दाम्पत्य भाव के जो चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, वे हिन्दी-साहित्य की महनीय निधि हैं ।

वात्सल्य भाव

वैष्णव भक्ति में भगवान् की बाल लीला का वर्णन वात्सल्य भाव की उपासना के अन्तर्गत माना गया है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण के बाल रूप का सुन्दर वर्णन मिलता है।

हिन्दी में सूर को वात्सल्य भाव का श्रेष्ठ कवि माना गया है। उनके पदों में कृष्ण के बाल रूप का अत्यन्त ललित चित्रण हुआ है।

जैन परम्परा में सैद्धान्तिक दृष्टि से बालरूप की उपासना को महत्व प्राप्त नहीं है, किन्तु तीर्थंकरों के जन्म के समय होने वाले उत्सव, जिन्हें जन्म-कल्याणक कहा गया है, इस उपासना के अवलम्बन बने।

पहले लिखा जा चुका है कि जन्म कल्याणक के आयोजन का एक रमणीय स्वरूप निर्धारित किया गया है। इन्द्र इस उत्सव का आयोजन करता है। तीर्थंकर बालक को सुमेरु पर्वत पर ले जा कर जन्माभिषेक करता है और स्तुति करता है। नृत्य, नाट्य आदि का आयोजन किया जाता है।

इसी को आधार बना कर जैन मनीषियों ने प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश में पंचकल्याणकों के अन्तर्गत बाल रूप की उपासना की। हिन्दी में भी उसका अनुकरण किया गया है।

भूधरदास ने भगवान् पार्श्वनाथ के पंचकल्याणकों का काव्यमय वर्णन किया है। पार्श्व के गर्भ में आते ही इन्द्र की आज्ञा से धनपति ने महाराज अश्वसेन के घर में साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा की। आकाश से गिरती मणियों की चमक ऐसी मालूम होती थी जैसे स्वर्गलोक की लक्ष्मी ही तीर्थंकर की मां की सेवा करने चली आयी हो। दुन्दुभियों से गम्भीर ध्वनि निकल रही थी मानो महासागर ही गरज रहा हो।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ के गर्भ में आते ही चारों प्रकार के देवताओं के आसन हिल उठे। इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से यह जान लिया कि आज भगवान् गर्भ में आये

हैं। वह अपने सुर परिवार सहित विमान पर चढ़ कर गर्भ-कल्याणकोत्सव मनाने के लिए चल पड़ा। सब देवताओं ने माँ बाप का कंचन कलशों से स्नपन किया और मंगल-गीत गाये। उन्होंने विविध प्रकार से गर्भवासी भगवान् की पूजा भी की। सबके चले जाने पर रुचिक-वासिनी देवियां रह गयीं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार से माँ की सेवा करती थीं। कोई सुस्वादु भोजन खिलाती थी और कोई ताम्बूल देती थी। कोई सुन्दर गाना गाती थी, कोई शैया बिछाती थी और कोई चन्दन से सींच कर घर सुवासित करती थी, कोई आंगन में बुहारी देती थी और कोई कल्पवृक्ष के फल-फूलों की भेंट चढ़ाती थी[१]।

नौ माह के उपरान्त भगवान् का जन्म हुआ। तीनों लोकों में स्वाभाविक आनन्द फैल गया। कहीं पर भी आंधी, मेह और धूल का प्रकोप दिखाई नहीं पड़ा, अपितु शीतल, मंद, सुगंध, पवन बहने लगा। कल्पवासियों के घरों में घंटे स्वतः बज उठे, ज्योतिषियों के यहां केहरियों का नाद होने लगा, भवनालयों में शंख बज उठे और व्यंतरवासियों के यहां असंख्य भेरियां ध्वनित हो उठीं। कल्पवृक्ष स्वयं ही पुष्पों की वृष्टि करने लगे। इन्द्रासन भी कम्पायमान हो उठे। इस भांति आनन्द-मग्न प्रकृति ने यह घोषित कर दिया कि भगवान् श्री जिनेन्द्र का जन्म हुआ है। सभी इन्द्र अपने-अपने सिंहासन से उठ कर खड़े हो गये और वहां से ही भगवान् को प्रणिपात किया।

इस अवसर पर कुबेर ने एक मायामयी ऐरावत की रचना की। ऐसे हाथी पर बैठ कर इन्द्र तथा शची चले। साथ में देवगण भी विविध उत्सवों को करते हुए चले। इन्द्रवृन्द प्रसूतिगृह में गयी, जहां माता पुत्र सहित लेटी थी। उसने प्रदक्षिणा दे कर प्रणाम किया। सुत-राग से रंगी मां ऐसी प्रतीत होती थी जैसे मानो बालक भानुसहित सन्ध्या ही हो। शची ने मायामयी बालक को मां के पास रख कर भगवान् को अपने हाथों में उठा लिया। बालक की देह से ऐसी ज्योति फूट रही थी कि उसके समक्ष करोड़ों सूर्यों की छवि भी मलिन ही प्रतिभासित होती थी। भगवान् की

१- द्रष्टव्य - पार्श्वपुराण

देह का स्पर्श करके इन्द्राणी को इतना सुख मिला कि उसका वर्णन कविवाणी से परे है। प्रभु के मुख वारिज को सुर-रानी बार-बार देखती थी, किन्तु अघाती नहीं थी।

सब देव मिल कर बालक भगवान् को पाण्डुक वन में ले गये और वहां पाण्डुक शिला पर विराजमान किया। फिर क्षीरसागर के एक सहस्र और आठ कलशों से उनका स्नपन हुआ। उसका प्रारम्भ सौधर्म स्वर्ग के इन्द्रों ने किया, फिर सब इन्द्रों और देवों ने अनेक भरे हुए कलशे उस सद्य: प्रसूत बालक के सिर पर ढ़ाले। वहां एक गंगा सी प्रवाहित होने लगी। अतुल बल और वीर्य के कारण ही भगवान् उस प्रबल जल-धारा को सहन कर सके, अन्यथा उसमें इतनी शक्ति थी कि बड़े-बड़े गिरि-शिखर भी खंड खंड हो जाते। भगवान् के श्यामवर्ण शरीर पर कलश-नीरकी ऐसी छटा थी जैसे मानो नीलांचल के सिर पर पाले के बादल बरस रहे हों। उनके स्नपन के जल की छटा उछल कर आकाश की ओर चल उठी सो मानो वह भी स्वामी के साथ पाप रहित हो गयी है, अत: उसकी भी ऊर्ध्वगति क्यों न हो। उनके स्नपन के जल की तिरछी छटा ऐसी विदित होती थी, जैसे किसी दिग्वनिता का कर्ण-फूल ही हो।

'जन्म-न्हौन' की विधि पूर्ण होने पर शची ने पवित्र वस्त्र से उनके शरीर को निर्जल किया। उस पर कुंकुमादि बहुत प्रकार के लेपन किये। अब भगवान् के शरीर की शोभा ऐसी मालूम होने लगी जैसे नीलगिरि पर सांझ फूली हो। शची ने भगवान् का सब शृंगार किया।

पद साहित्य में गर्भ और जन्म कल्याणकों के उपर्युक्त पारम्परिक वर्णन की भी अभिव्यक्ति मिली है --

नाभिराय के घर ऋषभ का जन्म हुआ। इन्द्र जन्म-कल्याणक मनाने के लिए नाभि के नन्द को गिरिराज के शिखर पर ले गये। देवगण क्षीरसागर से हाथों-हाथ एक हजार कंचन कलश भर कर लाये और इन्द्र अभिषेक करने लगे। सुर सुन्दरियां रसभरे रास नाचने लगीं, तालियां बजा बजा कर गीत गाने लगीं। देव-दुंदुभि, वीणा और बांसुरि बजने लगे। इन्द्र ने हर्षित हो कर आंखोंकी अंजलि से

रूप के झरते हुए अमृत को पिया पर तृप्ति नहीं हुई । भूधर कहते हैं यह सुदिन देखते ही बनता था । लाखों जीभें भी कह कर वर्णन नहीं कर सकतीं --

आज गिरिराजके शिखरसुंदर सखी, होत है अतुल कौतुक महा मनहरन ।
नाभिके नंद कों जगत के चन्दकौं, ले गये इन्द्र मिलि जन्ममंगल करन ।
हाथ हाथन धरे सुरन कंचन घरे, छीरसागर भरे नीर निरमल वरन ।
सहस अर आठ गिन एक ही वार जिन, सीस सुरईश के करन लागे ढ़रन ।
नचत सुरसुन्दरीं रहस रससीं भरी, गीत गावैं अरी देहिं तालीं करन ।
देव दुंदुभि बजैं बीन बंसी सजै, एकसी परत आनंद घनकी भरन ।
इन्द्र हर्षित हिये नेत्र अंजुल किये, तृपति होत न पिये रूपअमृतझरन ।
दास भूधर भनैं सुदिन देखें बनै, कहि थकैं लोक लख जीभ न सकै वरन ।।[२]

नाभिराय के द्वार पर बधाई हो रही है । सारे नगर में हर्षोल्लास और उत्साह है । एक सखि अपनी सखि से कहती है कि चल देखें, नाभिराय के घर इन्द्र का नाच हो रहा है । ताल अद्भुत हैं, लय मंगलकारी है। षट्रागों में गान हो रहा है । इन्द्र ने मणिमय नुपुर आदि आभूषण पहन रखे हैं । रंगबिरंगे वस्त्र पहने हैं । हरि के हाथों के नखोंपर अप्सरायें नाच रही हैं । किन्नर वीणा हाथमें लिए बजा रहे हैं । ऐसा अद्भुत नृत्य है कि उसे देख करअपूर्व तृप्ति मिलती है और मोक्ष की राह सूझने लगती है --

चलि सखि देखन नाभिरायघर, नाचत हरिनटवा ।।टेर०।।
अद्भुत तालमानशुभलययुत, चवत राग षटवा ।
मणिमय नुपुरादि भूषणयुत, युत सुरंग पटवा ।
हरिकरनखन नखन पैं सुरतिय, पगफेरत कटवा ।
किन्नर करधरबीन बजावत, लावत लय झटवा ।
"दौलत" ताहि लखे चख तृपतहि, सूझत शिवतटवा ।।[३]

२- भूधरविलास, पद ३१

३- दौलत विलास, पद ३६

भगवान् ऋषभनाथ के जन्मोत्सव का वर्णन करते हुए बुधजन कहते हैं --

आज तौ बधाई हो नाभिद्वार ।
मरुदेवी माता के उरमें जनमें ऋषभ कुमार ।
सची इन्द्र सुर सब मिलि आये नाचत हैं सुखकार ।
हरषि हरषि पुरके नर नारी गावत मंगलचार ।
ऐसौ बालक हुवौ ताके गुनकौ नाहीं पार ।
तन मन वचतैं वंदत बुधजन है भवतारनहार ।।[४]

आज नाभिराजा के द्वार पर बधाई बज रही है। मरुदेवी माता ने ऋषभकुमार को जन्म दिया है। इन्द्र शची तथा अन्य देवताओं के साथ इस नगर में आये हैं। सब प्रसन्नता से नृत्य, गान के साथ भगवान् का जन्मोत्सव मना रहे हैं। नगर के सभी नर, नारी हर्षपूर्वक मंगलाचार गा रहे हैं। इस बालक के गुणों की कोई सीमा नहीं है, कोई भी बालक के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता। कवि संसार समुद्र से पार लगाने वाले प्रभु की मन, वचन और काय से वन्दना करते हैं।

एक अन्य पद में बुधजन जन्म-कल्याणक की पारम्परिक मान्यताओं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं --

बधाई राजै हो आज राजै बधाई राजा नाभिराय के द्वारै ।
इन्द्र सची सुर सब मिली, आये सजि ल्याये गजराजै ।
जन्मसदनतैं सची ऋषभ ले सौंपि दये सुरराजै ।
गजपै धारि गये सुरगिरिपै न्हौन करन के काजै ।
आठ सहस्र सिर कलस जु ढारे पुनि सिंगार समाजै ।
ल्याय धर्यौ मरुदेवी करमै हरि नाच्यौ सुख साजै ।
लच्छन व्यंजन सहित सुभग तन कंचनद्युति रवि लाजै ।
या छवि बुधजन के उर निशिदिन तीनज्ञानजुत राजै ।।[५]

४- बुधजन विलास, पद ६८

५- वही, पद ६

तीर्थंकर ऋषभदेव के जन्मोत्सव की बात कहते हुए द्यानतराय ने लिखा है, "हे भाई आज इस नगरी में आनन्द मनाया जा रहा है। जितनी भी गजगामिनी और शशिवदनी तरुणियां हैं, वे सब मंगल गीत गा रही हैं। राजा नाभिराय के घर पुत्र-जन्म हुआ है और इस अवसर पर उनके यहां जो कोई भी कुछ मांगने आया, उससे कहीं अधिक दिया गया, जिससे उसे फिर मांगने की आवश्यकता ही नहीं रह गयी। मरुदेवी की कोख धन्य है, जिससे ऐसा प्रतापशाली पुत्र हुआ कि देवता भी मां के चरणों की वन्दना करने में अहोभाग्य मानते हैं --

भाई आज आनन्द है या नगरी।
गजगमनी शशि वदनी तरुनी मंगल गावत हैं सिगरी।
नाभिराय घर पुत्र भयो है किये हैं अजाचक जाचक री।
द्यानत धन्य कूंख मरुदेवी सुर सेवत जाके पद री।।[६]

इसी प्रकार का जन्मोत्सव चन्द्रपुरी में महासेन के घर चन्द्रप्रभु के जन्म पर मनाया गया --

देखो नया आज उछाव भया।
चन्दपुरी में महासेन घर चंदकुमार अ जाया।
मातलखमना सुतको गजपै लै हरि गिरि पै गया।
आठ सहस कलसा सिर ढारे बाजे बजत नया।
सौंपि दिये पुनि मात गोद में तांडव नृत्य थया।
सो बानिक लखि बुधजन हरषे जै जै पुर में किया।।[७]

बुधजन कहते हैं कि आज इस नगरी के लोगों में नया उत्साह आ गया है। चन्दपुरी के राजा महासेन के घर चन्दकुमार का जन्म हुआ है। माता सुलक्षणा के पुत्र को इन्द्र ने ऐरावत हाथी पर बैठाया और वह उन्हें सुमेरु पर्वत पर ले गया। वहां पाण्डुक शिला पर बैठा कर बाल प्रभु का एक हजार आठ कलशों से अभिषेक किया। अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। फिर प्रभु को माता को सौंप कर प्रसन्नता

६- द्यानत पद संग्रह, पद २०
७- बुधजन, वही, पद ८२

से तांडव नृत्य किया । इस उत्सव को देखकर सभी लोग अत्यन्त हर्षित हुए तथा प्रभु का जय-जयकार किया ।

दौलतराम ने निम्नांकित पद में शान्तिनाथ के जन्म-कल्याणक का एक सुन्दर सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखा है --

हेम कुंभ सुर हाथहिहाथन क्षीरोदधिजल आनौ ।
वदन उदर अवगाह एकचौ वसुयोजन परमानौ ।
सहस आठकर करि हरि जिनशिर ढारत जयधुनि गाजे ।
फिर हरि नारि सिंगार स्वामितन जजे सुरा जस गाये ।
पूरबली विधिकर पयान मुदठान पिता घर लाये ।
मणिमय आंगन में कनकासन पै श्री जिन पधराये ।
तांडव नृत्य कियौ सुरनायक शोभा सकल समाजे ।
फिर हरि जगगुरु पितरतोष शान्तेश घोष जिननामा ।
पुत्रजन्म उत्साह नगर में कियौ भूप अभिरामा ।
साथ सकल निज निज नियोग सुर असुर गये निजधामी ।
त्रिपद धारि जिन चारु चरन की 'दौलत' करत सदा जै वारी ।।[८]

देवता हाथों-हाथ क्षीरोदधि से स्वर्ण कलश भर-भर कर लाये । एक-एक कलश बत्तीस योजन व्यास का था । ऐसे एक हजार आठ कलशों से प्रभु का अभिषेक किया गया । जय-जय की ध्वनि गूंज उठी । फिर इन्द्राणी ने प्रभु के शरीर का शृंगार किया । देवों ने पूजा की और यशोगान किया । इस तरह जन्मोत्सव मना कर प्रसन्नता पूर्वक पिता के घर लौटे और मणिमय आंगन में कनकासन पर प्रभु को विराजमान किया । इन्द्र ने ताण्डव नृत्य किया । सारे समाज में प्रसन्नता और उत्साह था । इन्द्र ने पिता को सन्तुष्ट करने वाले बालक का नाम शान्तेश रखा । राजा ने नगर में उत्साहपूर्वक पुत्र जन्मोत्सव मनाया ।

८- दौलत विलास, पद ४५

जगतराम ने नेमिनाथ के जन्मोत्सव का चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है --

चिरंजीवो यह बालक री, जो भक्तन को आधार करी ।
समदविजैनन्दन जगवन्दन, श्री हरिवंश उजाल करी ।
जाको गरभ समै सुर पुज्यो, तब तै प्रजा सभाल करी ।
पन्द्रह मास रतन जे वरषे, प्रगट्यो तिनको माल करी ।
इस सुरगिरि पर देवों ने जाकी, कलश हजार प्रछाल करी ।
शची इन्द्र दोऊ नाचें गावें, उनको थो वहाल करी ।
जाके बालपने की महिमा, देखन ही हति हाल करी ।
वय लघु लऊ सबनि के गुरु प्रभु, जगतराम प्रतिपाल करी ।।[६]

भक्तों का आधार यह बालक चिरंजीवी हो । समुद्र विजय का नन्दन जगत में वंदनीय है तथा हरिवंश मेंउजाला करने वाला है । इस बालक के गर्भ में आने पर देवताओं ने नाना प्रकार से पूजा की तथा उत्सव किये । १५ माह तक कुबेर ने रत्नों की वर्षा की । इस अद्भुत बालक के जन्म के समय देवताओं ने अनेक प्रकार के उत्सवों का आयोजन किया । सब देवों ने सुमेरु पर्वत की पाण्डुक शिला पर बालक का एक हजार आठ कलशों से प्रक्षालन किया । इन्द्र तथा शची दोनों खूब नाचे, गाये। सभी लोग इस बालक के बाल्यकाल की महिमा देख कर प्रसन्न हुए । आयु में छोटे होते हुए भी ये प्रभु सबके गुरु हैं ।

पार्श्व के जन्म पर वामा देवी के घर बधाई का एक चित्र दौलतराम ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है --

वामा - घर बजत बधाई, चलि देखरी माई ।
सुगुनरास जग-आस भरन तिन, जने पार्श्व जिनराई ।
श्री ह्री धृति कीरति बुद्धि लछमी, हर्ष अंग न माई ।
बरन बरन मनि चूर सची सब, पूरत चौक सुहाई ।
हाहा हूहू नारद तुम्बर, गावत श्रुति सुखदाई ।

६- हिन्दी पद संग्रह, पद ११६

तांडव नृत्य नटत हरिनट तिन, नख नख सुरीं नचाईं ।
किन्नर कर धर बीन बजावत दृगमनहर छवि छाई ।
"दौल" तासु प्रभु की महिमा सुरगुरु पै कहिय न जाई ।
जाके जन्म समय नरकन में, नारकि साता पाई ।

बामा के घर बधाईबज रही है। गुणोंकी राशि, जग की आशाओं को पूरा करने वाले पार्श्व जिन का जन्म हुआ है। श्री, ह्री आदि देवियों का हर्ष उनके अंग में नहीं समा रहा। अनेक रंगों की मणियों को पूर कर सुन्दर चौक पूरे जा रहे हैं। कानों को सुखकर गान गाये जा रहे हैं। किन्नर हाथ में वीणा ले कर बजा रहे हैं। ऐसे प्रभु की महिमा सुरगुरु भी नहीं कह सकते। प्रभु के जन्म के समय नरकों में भी नारकियों को शान्ति मिल जाती है।

कवि बनारसीदास ने एक रूपक में आध्यात्मिक बेटे के जन्म का सुन्दर वर्णन किया है। वह आध्यात्मिक बेटा "शुद्धोपयोग" है। उसका जन्म मूल नक्षत्र में हुआ है। जिस प्रकार मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने वाला बालक समूचे कुटुम्ब के विनाश का कारण माना जाता है, ठीक वैसे ही शुद्धोपयोग के उत्पन्न होते ही मोह का परिवार, सम्बन्धी माया-ममता बिलकुल समाप्त हो गयी। उसने जन्म लेते ही ममता-रूपी माता, मोह-लोभ रूपी दोनों भाई, काम-क्रोध रूपी दो काका और तृष्णा रूपी धाय को खा लिया। पाप रूपी पड़ोसी, अशुभ कर्म रूपी मामा और घमंड नगर के राजा को समाप्त ही कर दिया तथा स्वयं समूचे गांव क में फैल गया। उसने दुर्मतिरूपी दादी को खा लिया और दादा तो उसका मुंह देखते ही मर गया था। इस बालक के उत्पन्न होने पर भी मंगलाचार के बधाये गाये गये थे। इस बालक का नाम भौंदू रखा गया, क्योंकि उसके कुछ भी रूप और वर्ण नहीं है। यह तो ऐसा बालक है जिसने नाम रखने वाले पांडे को भी खा लिया है।

मूलन बेटा जायो रे साधो, जाने खोज कुटुम्ब सब खायो रे साधो ।
जन्मत माता ममता खाई, मोह लोभ दोई भाई ।

१०- दौलत विलास, पद

काम क्रोध दोई काका खाये, खाई तृष्णा दाई ।
पापी पाप परोसी खायो, अशुभ करम दोई मामा ।
मान नगर को राजा खायो, फैल परो सब गामा ।
दुरमति दादी खाई दादो मुख देखत ही मुओ ।
मंगलाचार बधाये बाजे, जब यों बालक हुओ ।
नाम धरयो बालक को भौंदू, रूप बरन कछु नाहीं ।
नाम धरते पांडे खाये, कहत 'बनारसि' भाई ।।[११]

जैन कवियों के पद साहित्य में सूर या तुलसी की तरह का बाल-भाव का वर्णन करने वाले पदों का प्रायः अभाव मानना चाहिए । तीर्थंकर के गर्भ या जन्म कल्याणकों अथवा जन्म के अवसर पर बधाई के जो पद लिखे गये हैं उनमें 'उत्सव' की तो व्यंजना है, किन्तु उन्हें बाल वर्णन कहना उपयुक्त न होगा । सूर ने कृष्ण की बाललीला का तथा तुलसी ने बालक राम का वर्णन करने वाले जैसे पद लिखे हैं वैसे हिन्दी के जैन कवियों ने नहीं लिखे । इसका कारण सैद्धान्तिक है । जैन परम्परा में तीर्थंकर के बालरूप की उपासना को महत्व नहीं दिया गया है । इसलिए उपासना वाले पदों में उसका वर्णन न होना स्वाभाविक है ।

पदों के अतिरिक्त पुराण, चरित, प्रबन्ध-काव्य या अन्य रचनाओं में जहां तीर्थंकरों के पूरे जीवन चरित्र को निबद्ध किया गया है, वहां बाल-भाव के भी मनोरम वर्णन मिलते हैं । प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी की रचनाओं में समान रूप से इसे देखा जा सकता है ।

अपभ्रंश में स्वयंभू के पउमचरिउ तथा पुष्पदन्त के बाल वर्णन अत्यन्त रमणीय हैं, जिनका प्रतिबिम्ब सूरदास के बाल वर्णन में भी देखा जा सकता है। पुष्पदन्त ने ऋषभ का वर्णन करते हुए लिखा है --

सेसवलीलिया कीलमसीलिया, पहुणा दाविया केण ण भाविया ।।

११- बनारसी विलास, पृ० २३६

छुली छुसरु ववगयकढिल्लु, सह जायक विलकीलु जढिल्लु ।।
हो हल्लरु जो जो सुहं सुअहिं । पइं पणवंतउ भुयणुं ।।
णंदइ रिज्झइ दुक्किय मलेण । का सुवि मलिणुणं ण होइ मणुरं ।
छुली छुसरो कहि किंकिणि सरो । णिरुव मतीलउ कीलइ बालउ ।[12]

पुष्पदन्त के इस वर्णन से सूर के निम्न पद की तुलना की जा सकती है--

कहां लौं बरणौं सुन्दरताइ ।
खेलत कुंअर कनक आंगन में, नैन निरखि छवि छाइ ।
कुलहि लसति सिर स्याम सुभग अति, बहुविधि सुरंग बनाई ।
मानो नवघन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढाइ ।
अति सुदेश मृदु हरत चिकुरमन, मोहन मुख बाराइ ।
खंडित वचन देत पूरन सुख, अल्प अल्प जलपाइ ।
घुटुरन चलत रेनु तन मंडित, सूरदास बलि जाइ ।।[13]

ज्ञानभूषण ने आदिनाथ की बालदशाओं का सुन्दर वर्णन किया है ।
बालक आदीश पालने में सो रहा है । कभी आंख खोल करदेखने लगता है, कभी रो उठता है और कभी अपने चंचल हाथों से हार मोड अथवा तोड़ देता है --

आहे खिणि जोवइ खिणि सोवइ रोवइ लहीअ लगार ।
आलि करइ कर मोडइ त्रोडइ नवसर हार ।।

बाल भगवान् के पैरों में स्वर्ण के घुंघरू पड़े हैं । जब वह लड़खड़ाते डगों से चलते हैं तोउनमें से `घ्रण-घ्रण' की मधुर ध्वनि फूटती है , जिसे सुन कर नृपति और मां मरुदेवी दोनों ही को अपार प्रसन्नता होती है --

आहे घ्रण घ्रण घुंघरी वाजइ हेम तणी विहु पाइ ।[14]
तिम तिम नरपति हरखइ मरुदेवी माइ ।।

12- पुष्पदन्त, महापुराण
13- सूरदास, सूरसागर
14- हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ० ३८१ पर उद्धृत ।

यहां `घुंघरी` और `घ्रण-घ्रण` ने समूचे दृश्य को ही उपस्थित कर दिया है। घुंघरू का लघुरूप `घुंघरी` लघु बालक के उपयुक्त ही है। उसमेंसे निकलने वाली ध्वनि के लिए `घ्रण-घ्रण` के प्रयोग से चित्र जीवन्त हो उठा है।

बालक के नेत्र कमल-दल के समान हैं, अर्थात् कमल के पत्तों जैसे दीर्घायित और सुन्दर हैं। बालक की वाणी में कोमलता है। बालक केवल बाह्य सौन्दर्य से ही नहीं, अपितु आन्तरिक गुणों से भी युक्त है। उसमें समूचे गुण इस भांति भरे हुए हैं जैसे मानो शरद्-कालीन सरोवर में निर्मल नीर भरा हो --

आहे नयन कमल दल सम किल कोमल बोलइ वाणी।
शरद सरोवर निरमल सकल अकलगुण खानि।

इसी भांति कवि ने भगवान् के निरन्तर बढ़ने का वर्णन किया है। आदीश्वर दिन-दिन इस भांति बढ़ रहे हैं, जैसे द्वितीया का चन्द्र प्रतिदिन ~~विकि~~ विकसित होता जाता है। उनमें शनैः-शनैः ऋद्धि, बुद्धि और पवित्रता प्रस्फुटित होती जा रही है, जैसे समाधिलता पर कुन्द के फूल खिल रहे हों।

बालक के प्राकृतिक सौन्दर्य को विविध उपमानों द्वारा अंकित किया है। उसका मुख पूर्णमासी के चन्द्र के समान है। अनुपम है। संसार के किसी पदार्थ से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। उसके हाथ कल्पवृक्ष की शाख के समान हैं और वे घुटनों तक लम्बे हैं, अर्थात् उस बालक के महापुरुष होने की सूचना देते हैं --

आहे मुख जिसु पूनिम चंद नरिंदन मित पद पीठ।
त्रिभुवन भवन मझारि सरीखउ कोई न दीठ ॥
आहे कर सुरतरु वर शाख समान सजानु प्रमाण।
तेह सरीखउ लखहीं भूप सरूपहिं जांणि।
आहे दिन दिन बालक बाधइ बीज तणुं जिम चन्द।
रिद्धि विबुद्धि विशुद्धि समाधिलता फुल कुंद ॥[१५]

१५-